# पैगम्बरे इस्लाम के महान साथी

मौलाना वहीदुद्दीन खाँ

# पैग़ंबर-ए-इस्लाम के महान साथी

मौलाना वहीदुद्दीन ख़ां

Goodword Books
1, Nizamuddin West Market
New Delhi-110 013
email: info@goodwordbooks.com
www.goodwordbooks.com
Printed in India

# अनुक्रम

# पैग़ंबर-ए-इस्लाम के साथियों की महानता

सहाबा-ए-केराम यानी पैग़ंबर-ए-इस्लाम के मित्रों को कुरआन में खैर-ए-उम्मत (आल-ए-इमरान, ११०) कहा गया है, नबियों और रसूलों के बाद वे तमाम इंसानों में बेहतर समूह की हैसियत रखते हैं

(सहाबा या असहाब-ए-रसूल को जो कि वास्तव में रसूल के साथी हैं आगे सिर्फ सहाबा संबोधित किया जायेगा.)

सहाबा की असाधारण महानता क्यों है? यह कोई रहस्य और चमत्कार की बात नहीं, प्रमाणिक सत्य है. वास्तविकता यह है कि उन्होंने अपने वचन और कर्म से इतिहास में ऐसी मिसाल क़ायम की है, जिसका कोई उदाहरण किसी मानव समुदाय के इतिहास में नहीं मिलता यही कारण है कि वे तमाम मानव इतिहास में सबसे सर्वोच्च और सर्वोत्तम समुदाय माने गये.

उनका सबसे पहला और अनोखा कारनामा है 'मारिफ़त-ए-हक' कहा जाता है. लोग सच्चाई के दिखावे को प्रमुख जानते हैं. उन्होंने सच्चाई को हक़ीक़त के ऐतिबार से जाना. लोग मानी हुई सच्चाई को मानते हैं. उन्होंने सत्य को खुद अपने विवेक से ढूंढा. लोग उस सत्य का आदर करते हैं, जो दूर से उंचा दिखाई दे, उन्होंने उस सच्चाई का सम्मान किया जो सदृश्य नहीं थी.

लोग उस सच्चाई के चैम्पियन बनते हैं, जिसके साथ भौतिक तत्वों का वज़न भारी हो, जबकि उन्होंने उस सच्चाई के लिये खुद को समर्पित कर दिया था, जो तात्विक वज़न से खाली था. लोग उस सच्चाई का झंडा को उठाते हैं, जिसकी पीठ पर एक महान इतिहास अस्तित्व में आ चुका हो, जबकि उन्होंने एक इतिहासहीन सच्चाई का साथ दिया और हर तरह की भावनात्मक और शारीरिक कुर्बानी देकर खुद उसका एक शानदार इतिहास बनाया.

रसूल के साथी तमाम मानवीय पीढ़ियों के लिये 'रोल मॉडल' की हैसियत रखते हैं, अल्लाह तआला को यह मंजूर था कि वह क़यामत तक पैदा होने वाले अपने बंदों के लिये एक नमूना (उदाहरण) स्थापित करें. रसूल के मित्रों ने अपने असाधारण बलिदानों के ज़रिये यह दरजा हासिल किया कि वे तमाम मानवता के लिये एक स्थायी (जीवन पद्धति का) नमूना बन गये.

ये वह लोग हैं जो ज़िंदगी के प्रत्येक गंतव्य पर सत्य से डिगे नहीं, जिन्होंने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में, वही धारा अपनाई जो सत्य और न्याय पर आधारित थी. वे स्वतंत्र होते हुए भी उसूलों के पावंद रहे. अधिकार रखते हुए उन्होंने खुद को

अधिकारहीन कर लिया उनके लिये मनमानी और भटकाव के अवसर थे, पर उनकी आत्म-शक्ति ने उनके संकल्प को इतना मज़बूत कर दिया था कि वे गुमराह न हुए. उन्होंने हर मामले में खुद को सीधा रस्ते की स्तरियता पर मर्यादित रखा.

संपूर्ण मानव इतिहास में कभी ऐसा नहीं हुआ कि किसी पैग़ंबर को समकालीन लोगों ने सही ढ़ंग से, खुली स्वीकृति के साथ पहचान लिया हो. पिछले पैग़ंबरों को व्यक्ति मिले मगर समूह न मिला रसूल के मित्रों का यह अनोखा कारनामा है कि उन्होंने समूह के धरातल पर अपने समकालीन पैग़ंबर को पहचाना और बड़ी संख्या में उनके मिशन को अपना कर उस मिशन के लिये अपनी ज़िंदगी समर्पित कर दी. उनके साथ बार-बार वह घटनाएं भी घटीं जिन्हें आपत्ति बनाकर लोग बिदक जाते हैं और साथ छोड़ देते हैं मगर उन्होंने किसी आपत्ति को आपत्ति नहीं बनाया, वह हर तरह की नाखुशगवार बातों को नज़रअंदाज करते हुए रसूल की हिमायत करते रहे, यहां तक कि उसी हाल में दुनिया से चले गये.

आप (मुहम्मद सलअम) को अल्लाह तआला ने आख़िरी नबी बना कर भेजा था. वे 'पैग़ंबर-ए-आखिर-उज़-ज़मान' थे. यह कोई साधारण नियुक्ति का मामला न था बल्कि एक मुश्किल योज़ना को कार्यान्वित करने का मामला था. इसके लिये ज़रूरी था कि एक व्यापक प्रभाव वाले इन्क़लाब को खड़ा करके वे ऐतिहासिक कारण स्पष्ट किये जाएं जिसके बाद आपकी नुबूव्वत हमेशा के लिये एक मुसल्लम (संपूर्ण) नुबूव्वत की हैसियत इख़्तियार कर ले. आपका 'दीन' पराजयहीनता की सीमा तक एक सुरक्षित 'दीन' (धर्म) बन जाये. आपका व्यक्तित्त्व और आपका कारनामा इतिहास में इस तरह सिद्ध हो जाये कि कोई मिटाने वाला इसे मिटाने में कभी कामयाब न हो सके.

यह योजना यथार्त के संसार में और मानवीय स्वतंत्रता के माहौल में पूरी करनी थी. इस पहलू ने इस मंसूबे को अंतत: एक मुश्किल योज़ना बना दी. रसूल के मित्रों ने खुद को पूरी तरह इस 'अल्लाह की योज़ना' में शामिल किया. इस योज़ना के संदर्भ में उन्होंने अपनी ज़ान को ज़ान और अपने माल को माल नहीं समझा. इसके लिये उन्होंने अपने अहम को कुचला. अपने ही 'ताज' को अपने पैरों के नीचे रौंद डाला. अपनी महबूब वस्तुओं को छोड़ कर इस योज़ना के प्रति समर्पित हुए उन्होंने न मानने वाली बातों को माना. उन्होंने असह्य को सहन किया. पैग़ंबर को पाने के लिये उन्होंने अपना सब कुछ खो दिया. किसी भी शर्त और सुरक्षा के बग़ैर वह रसूल के कार्यों में उनके साथ रहे. हक़ीक़त यह है कि रसूल के मित्र मानव इतिहास

के एक पृथक गिरोह या समूह थे. रसूल के मित्रों की महानता इस से ज़्यादा है कि उस महानता को शब्दों में ब्यान किया जाये.

## प्राकृतिक विशेषताएं

प्रारंभिक काल के समाज (Prmnitive society) के बारे में अट्ठारहवीं और उन्नीसवीं सदी में जो अध्ययन किया गया, उसमें यह मान लिया गया था कि यह लोग मानसिक और नैतिक ऐतिबार से हीनता के शिकार (Mentally and Morally inferior) थे. मगर बीसवीं सदी में मानव-विज्ञान (Anthropology) के विद्वानों ने जो शोध किया, तो स्थिति बिलकुल बदल गई. अब मालूम हुआ है कि प्रारंभिक काल का मानव बहुत ही उच्च कोटि का इंसान था. सांस्कृतिक साजोसामान में हालांकि वह बहुत पीछे था मगर मानवीय विशेषताओं के ऐतिबार से वे स्तरीय इंसान की हैसियत रखता था. (VII/382)

इस आधुनिक शोध के बाद समाज शास्त्र में एक नयी विषय विधा अस्तित्व में आई है, जिसको प्रीमीटीविज्म (Primitivism) 'प्राचीनवाद' कहा जाता है. इस विधा से प्रारंभिक काल के इंसान का अध्ययन इस ऐतिबार से किया जाता है कि वह अपनी विशेषताओं के परिप्रेक्ष्य में आदर्श मानव थे और वर्तमान मानव को उसी का अनुसरण करना चाहिये. (VIII/242)

यह दृष्टिकोण इस्लाम की वैचारिक इतिहास के ठीक अनुकूल है. कुरआन में बताया गया है कि प्रारंभिक काल के लोग 'उम्मत-ए-वाहिदा' थे (अल-बक़रा-२१३) यानी वे उस एक मात्र सही रास्ते पर थे जो खुदा ने उनके लिये पहले मानव 'आदम' के जन्म के समय निश्चित किया था. एक अर्से के बाद वह उस रास्ते से हट गये. उनमें बिगाड़ का दौर शुरू हुआ, तो खुदा ने पैग़ंबरों को भेजना शुरू किया. यहां तक कि आख़िरी पैग़ंबर मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को अवतरित किया.

प्रारंभिक काल का इंसान सही क्यों था इसका कारण यह है कि वह प्राकृतिक उसूलों पर था. अल्लाह तआला ने इंसानों के अंदर जो प्रवृत्ति बनाई है वह वास्तव में प्राकृतिक विशेषताओं पर आधारित है. तो जब तक आदमी अपनी पैदाइशी प्रवृति पर था वह उंचे स्तर की मानवीय विशेषताओं से भरा पड़ा था. उसके बाद सभ्यता का दौर शुरू हुआ. सभ्यता की इस कृत्रिमता ने इंसान को बिगाड़ना शुरू किया. अब इसी से इंसान की प्राकृतिक प्रवृत्ति दब गई, और उस पर कृत्रिम सभ्यता हावी हो गई.

प्रवृत्ति का यही बिगाड़ है, जिसका नतीजा यह था कि बाद के दौर में आने वाले पैग़ंबरों को नकारा जाता रहा. इसी बिगाड़ के आधार पर मानवीय प्रवृत्ति और ख़ुदा के मज़हब में अनुकूलता बाक़ी न रही. इंसान अपने बिगड़े हुए मिज़ाज के कारण पैग़ंबरों को पहचानने और उनकी आवाज़ पर हां में हां मिलाने वाला न बन सका. यह स्थिति हज़ारों साल तक जारी रही.

हज़रत इब्राहीम का पैग़ाम जब इराक़ निवासियों को प्रभावित न कर सका तो इंसान की अयोग्यता अंततः स्पष्ट हो गई. अब अल्लाह तआला के हुक्म से यह योज़ना बनाई गई कि इंसान को दुबारा सभ्यता विहीन संसार की तरफ़ वापस ले जाया जाये. इस योज़ना के अनुसार हज़रत इब्राहीम के बेटे हज़रत इस्माईल को अरब के रेगिस्तान में बसा दिया गया, जहां उस समय सिर्फ़ प्रकृति का वातावरण था. प्राकृतिक दृश्यों के सिवा वहां कोई और चीज़ मौजूद नहीं थी.

इस रेगिस्तानी वातावरण में एक ऐसी पीढ़ी की तैयारी शुरू हुई जो सभ्यता से संपूर्णतया पृथक होकर परवरिश पा सके. जन्म का सिलसिला जारी रहा और यह नस्ल बढ़ती रही. यहां तक कि ढ़ाई हजार वर्षों में एक नयी क़ौम बन कर तैयार हो गई. इस नयी क़ौम के हर व्यक्ति में वह सर्वोच्च प्राकृतिक विशेषताएं पूरी तरह मौजूद थीं जो प्रारंभिक काल के इंसानों में पायी जाती थीं. यही प्रवृत्ति और मानवीय विशेषता इस रेगिस्तानी समुदाय की पहचान बन गई.

प्राचीन अरबों में सर्वोत्तम मानवता की परिभाषा के तौर पर कुछ शब्द रीतिबद्ध थे. मसलन अलफुतूवत, अलमुरूवह, अल रुजूलियत वग़ैरह उर्दू में इसे जवांमर्दी, मर्दानगी, बहादुरी कह सकते हैं. इससे अरबों का मतलब वही था जिसे आज 'प्रारम्भिक मानवीय विशेषता' कहा जाता है. दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि इस्माईली संतानों की यह रेगिस्तानी क़ौम प्राचीन प्रारंभिक समाज का मॉडल थी.

रसूलुल्लाह से 'मआदिन अरब' के बारे में पूछा गया तो फरमाया - 'तुम में जो लोग जाहिलियत के ज़माने में अच्छे थे, वह इस्लाम में भी अच्छे होंगे. प्रारंभ काल के अरबनिवासी मुसलमानों की असाधारण विशेषताएं भी इसी का नतीज़ा थीं, अनस बिन मालिक रज़िअल्लाहु अन्हु सहाबा के बारे में कहते हैं कि, ख़ुदा की क़सम हम झूठ नहीं बोलते थे और न हम जानते थे कि झूठ क्या है.

अरब के रेगिस्तान में सर्वोत्तम प्राकृतिक विशेषताओं से भरेपुरे जो इंसान तैयार किये गये थे, उन्हीं में से विशिष्ट चुने हुए व्यक्तियों को, जो ईमान लाये और रसूल के साथी बने, सहाबा, या असहाब-ए-रसूल कहा जाता है. यह एक बेहतरीन सच्चा

तत्व था जो इस्लाम की 'मारिफ़त' (भक्तिवादिता) और पैग़ंबर की दोस्ती से जीवन अमृत लेकर चमक उठा. (विस्तार के लिये देखिये: हक़ीक़त-ए-हज-५४-५५)

# ख़ैर-ए-उम्मत

'तुम बेहतरीन गिरोह (समूह) हो, जिसको लोगों के वास्ते निकाला (पैदा किया) गया है. तुम भलाई का हुक्म देते हो, बुराई से रोकते हो और अल्लाह पर ईमान रखते हो.' (आल-ए-इमरान, ११०)

इस आयत में ख़ैर-ए-उम्मत (बिहतरीन समूह) से अर्थ सहाबा का समूह है. 'उख़रिजत' का अर्थ 'उज़हिरत' या 'ऊजिदत' है. यानी उस समूह को विशेष आयोजन के साथ जन्म देकर मैदान में लाया गया है. यह उस रेगिस्तानी योज़ना की तरफ़ संकेत है, जिसके ज़रिये से सहाबा की वह अनोखी जमात हासिल की गई, जिसको प्रोफेसर डी० एस० मार्गोलिथ (1858-1940) ने 'बहादुरों की एक कौम' (A Nation of heroes) का नाम दिया है.

असहाब-ए-रसूल कौन थे? यह इस्माईल के वंशज थे. इस वंश के पूर्वज प्रथम इस्माईल बिन इब्राहीम हैं. 4000 वर्ष पहले हज़रत इब्राहीम ने अपने छोटे बच्चे इस्माईल और उनकी मां हाजिरा को इराक़ से निकाला और उन्हें ले जाकर हिजाज़ नामक अरब के रेगिस्तान में छोड़ दिया.

उस वक्त यह इलाक़ा वीरान और पानी तथा पेड़ पत्तों से ख़ाली था. वहां कोई इंसानी आबादी नहीं थी. यह मुकम्मल तौर पर फ़ितरत (प्रकृति) की एक नयी दुनिया थी. रेगिस्तान और पहाड़, ज़मीन और आसमान, सूरज और चांद बस इसी तरह की चीज़ें थीं जिनके बीच किसी व्यक्ति को अपनी रातें और दिन बितानी थीं. यहां शहरीयत और सभ्यता का कोई निशान न था. चारों तरफ़ सिर्फ़ प्रकृति की हैबतनाक निशानियां फैली हुई नज़र आती थीं. उस पर यह कि यहां आराम और ऐश्वर्य नाम की कोई वस्तु नज़र नहीं आती थी. यहां जीवन एक सशक्त चुनौती थी. आदमी मजबूर था कि वह चुनौतियों का मुक़ाबला करते हुए मशक्कत से भरे माहौल में ज़िंदा रहने की कोशिश करे.

सभ्यता की ख़राबियों से मुक्त उस साधारण माहौल में जन्म के ज़रिये नस्लें बढ़ती रहीं, जिनमें ऐसे लोग थे जिनके हालात ने उन्हें मानवीय औपचारिकताओं से पृथक कर रखा था. वह सब कृत्रिम व्यवहार से बिलकुल अंजान थे. वे एक ही नेतृत्व को जानते थे और वह प्रकृति का नेतृत्व था. प्रकृति निःसन्देह बहुत ही सर्वोच्च स्तर

का शिक्षक है, और रेगिस्तान की यह नस्ल उसी स्तरीय शिक्षक के तहत बनकर तैयार हुई.

आल-ए-इमरान की उपरोक्त आयत में ख़ैर-ए-उम्मत की दो खास विशेषताएं बताई गई हैं. एक यह कि वह 'मारूफ़' का हुक्म देने वाले और 'मुनकिर' से रोकने वाले हैं. यानी सत्य के विरूद्ध बात को सहन न करना और सत्य से कम किसी चीज पर राज़ी न होना, उनकी मुस्तक़िल मिज़ाजी (धैर्य) है. वह उन लोगों में से नहीं हैं जो अपने इर्द-गिर्द से असंबद्ध रहकर जीवन गुज़ारते हैं या जिनका रवैया व्यक्तिगत सुधारों के तहत निश्चित होता है. बल्कि वह मुकम्मल तौर पर हक़पसंद हैं, सत्य और असत्य के बहस में न पड़ना या असत्य से समझौता करके ज़िंदा रहना उनके लिये संभव नहीं.

उनकी दूसरी विशेषता यह बताई कि वे अल्लाह पर ईमान रखते हैं. दूसरे शब्दों में यह कि वह मारिफ़त प्राप्त लोग हैं. वे बाहरी और सदृश्य मामलों में गुम हो जाने वाले लोग नहीं हैं. उन्होंने सर्वोत्तम यथार्थ को ढूंढा है. उनकी चेतना प्राप्त मानवीय चेतना है. उन्होंने रचना-संसार के पीछे रचनाकार का जलवा देख लिया है.

यह दोनों विशषताएं नायाब हैं. सत्यवादी और आध्यात्मिक (मारिफ़त वाले) वहीं लोग हो सकते हैं, जो अति गंभीर हों, जो उसूल के आधार पर अपना मत स्थापित करते हों न कि इच्छा के आधार पर. जो लोग भौतिक यथार्थ के बजाये शब्दार्थिक यथार्थ को अपने ध्यान की धुरी बनाए हो, जो स्वार्थ के बजाये सच्चाई के लिये जीने वाले हों, जो बिना दबाव के अपने स्वतंत्र फ़ैसले के तहत सही रवैया इख़्तियार कर लें, जो दलील से चुप हो जाएं, बिना इसके उन्हें चुप कराने के लिये कोई ताक़त इस्तेमाल की गयी हो.

इस दुनिया में सबसे बड़ा कथन सच्चाई की स्वीकृति है, और इस दुनिया में सबसे बड़ा कर्म घटनात्मक यथार्थ से अनुकूलता पैदा करना है. और रसूल के मित्रगण निःसन्देह उन बिरले इंसानों में से थे, जो इस मानवीय स्तर पर आख़िरी तक पूरे उतरे.

यह वह मुकम्मल इंसान है, जिसकी इंसानियत पूरी तरह सुरक्षित होती है, जो अपनी रचनात्मक प्रवृत्ति पर ठहरा रहता है. यही वह ज़िंदा प्रकृति वाला इंसान है, जो अरब के रेगिस्तानी माहौल में ढ़ाई हजार वर्षो के कर्त्तव्यों से तैयार किया गया. और 'सहाबा' का गिरोह (समुदाय) वह समुदाय है जिसे इंसानों के इस विशेष समूह से चुन कर निकाला गया.

सहाबा वह लोग थे, जो दूसरों के सुख के लिये जियें. जिनकी सारी कोशिश यह थी कि वह लोगों को जहन्नम से बचा कर जन्नत में पहुंचा दें. इसी लिये वे 'खैर-ए-उम्मत' करार पाये.

# एक गवाही

इब्न-ए-अबिद्दुनिया ने लिखा है: 'इस्माईल अलसदी कहते हैं कि मैंने अबु-इराका ताबई को यह कहते हुए सुना कि मैंने चौथे खलीफा हज़रत अली रज़िअल्लाहु अन्हू के साथ फ़जर की नमाज़ पढ़ी.

फिर जब उन्होंने अपने चेहरे को दायीं तरफ़ फेरा तो वह इस तरह रहे कि, जैसे उनपर बहुत गम हो. यहां तक कि जब धूप मस्जिद की दीवार पर एक नेज़ा (ड़ेढ़ फिट) के बराबर आ गई, तो उन्होंने उठकर दो 'रकअत' नमाज़ पढ़ी. फिर उन्होंने अपने हाथ को पलटते हुए कहा - 'खुदा की क़सम मैंने मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के असहाब (मित्रों) को देखा है. आज मैं कोई चीज़ उनके जैसा नहीं देखता. वे खाली हाथ, बिखरे हुए बाल और गर्द अटी स्थिति में सुबह करते थे. उनकी दोनों आखों के दरमियान बकरी के घुटनों जैसा निशान होता. वह अपनी रात अल्लाह के लिये 'सजदा' और 'क्याम' (नमाज़ में खड़े होने) में गुज़ारते थे. वे अल्लाह की किताब की तिलावत करते. वे अपनी पेशानी और कदमों के बीच बारी-बारी अमल करते, (यानी रकूअ करते). जब वे सुबह करते तो अल्लाह को याद करते. उस वक्त वह हिलते जिस तरह वृक्ष हवा चलने पर हिलता है. उनकी आंखें आंसू बहातीं यहां तक कि उनके कपड़े भीग जाते. खुदा की क़सम आज के लोगों को देखकर ऐसा महसूस होता है कि इन्होंने अपनी रात नींद (बिखबरी) में गुजारी'. अली रजिअल्लाहु अन्हु ने यह कहा फिर वह वहां से उठ गये. उसके बाद वह कभी हंसते हुए नहीं देखे गये, यहां तक कि दुश्मन-ए-खुदा इब्न-ए-मुल्ज़िम ने उनको क़त्ल कर दिया. (अल-बिदाया वन्निहाया ६/८)

'ख़ाली हाथ, बिखरे बाल और गर्द से अटा होना' इस बात का प्रतीक है कि वे दुनिया से आखरी हद तक असंपृक्त थे और आखिरत की तरफ अंतिम सीमा तक आकर्षित हो चुके थे. 'दीन' की चिंता में वे इस हद तक गुम हो चुके थे कि दुनिया वाले उन्हें देखें तो समझें कि ये मजनून लोग हैं.

ज़िक्र (खुदा की चर्चा), इबादत और तिलावत (कुरआन पढ़ना) उनका प्रिय कर्म हो चुका था लंबे क्याम में उन्हें तस्कीन मिलती थी. उनके दीर्घ सज्दों का निशान

उनके माथों पर नज़र आता था. वे अंदर से बाहर तक खुदा के नूर में नहाये हुए थे, उनकी तमाम ज़िंदगी खुदा को समर्पित हो चुकी थी.

'अल्लाह की याद के वक्त वे इस तरह हिलते जैसे वृक्ष तेज़ हवा में हिलता है' यह उस कैफियत का ज़िक्र है जो इबादत के वक्त उनके जिस्म में थरथराहट से नुमाया होती थी. अल्लाह की याद उनके सीने में भूंचाल की तरह उठती थी. इससे उनकी आत्मा के अन्दर एक बिजली दौड़ जाती और उनके शरीर पर कंपकपी की कैफियत जारी हो जाती. वह अल्लाह के खौफ से बार-बार कांप उठते थे.

'उनकी आंखें आंसू बहातीं और उनके कपड़े भीग जाते'. इससे अंदाज़ा होता है कि उनके लिये खुदा का ज़िक्र कोई भाषाई उच्चारण का कर्म नहीं था बल्कि एक आत्मिक कर्म होता था.

हज़रत अली बिन अबी तालिब रज़िअललाहु अन्हु ने चंद शब्दों में असहाब-ए-रसूल का जो खाका बताया है, वह निहायत ही संपूर्ण और खरा ख़ाका है. इन संक्षिप्त शब्दों में रसूल के मित्रों की वह तमाम बुनियादी विशेषताएं आ जाती हैं, जिनसे वे लैस थे. और जिसके कारण उन्हें पूरे मानव समाज ने पैग़ंबरों के बाद सब से उंचा दर्जा दिया.

असहाब-ए-रसूल भी मोमिन थे, जिस तरह दूसरे लोग मोमिन होते हैं. मगर उनका ईमान उनके लिये एक बहुत गंभीर फैसला था. यहां तक कि उसने उन्हें दीवाना बना दिया. उनका ईमान उनके पूरे वजूद में चमक उठा था. अल्लाह की याद उनके लिये एक आत्मिक भूकंप या रूहानी जलज़ले की तरह थी. आखिरत को मानना उनके लिये एक ऐसी तुफानखेज हकीकत पर यकीन करना था. जो उनकी आंखों से आंसुओं का सैलाब बन कर बह निकले

रसूल के मित्र इतिहास के सब से ज्यादा ज़िंदा इंसान थे और इतिहास के सबसे बड़े इन्कलाबी समूह.

## वल्लज़ीनअ-मअहू

### (और उनके (पैग़ंबर के) सभी साथी)

मुहम्मद अल्लाह के रसूल हैं और 'जो लोग उनके साथ हैं' वे मुन्किरों पर सख़्त हैं और आपस में मेहरबान हैं. तुम उनको 'रूकूअ' में और सज्दे में देखोगे. वे अल्लाह की दया और उसकी रज़ामंदी की इच्छा में लगे रहते हैं. उनकी निशानी

उनके चेहरों पर है, सज्दा के असर से, उनकी यह मिसाल 'तौरात' में है, और इंजील (बाइबल) में उनकी मिसाल यह है कि जैसे खेती, उसने अपना अंखुवा निकाला फिर उसको मज़बूत किया. फिर वह और मोटा हुआ. फिर वह अपने तना पर खड़ा हो गया. वह किसानों को भला लगता है, ताकि उनसे काफिरों को जलाये. उनमें से जो लोग ईमान लाये और नेक कर्म किया, अल्लाह ने उनसे क्षमा (मोक्ष) का और बड़े सवाब का वायदा किया है. (सूरः अल-फ़तह २९)

कुरआन के ये शब्द असहाबे रसूल के बारे में हैं. असहाबे रसूल की ऐतिहासिक अहमियत के आधार पर उनकी प्राचीन विशेषताएं आसमानी किताबों में दर्ज कर दी गई थीं. वर्तमान संदर्भ 'तौरात' (पहली आसमानी किताब) में आज भी मौजूद है कि वह लाखों कुदसियों (संतों) में से आया. (इस्तिस्ना २:३३) मौजूदा बाइबल में यह पेशनगोई इन शब्दों में मिलती है: खुदा की बादशाही ऐसी है, जैसे कोई आदमी ज़मीन में बीज डाले और रात को सोए और दिन को जागे और वह बीज इस तरह उगे और बढ़े कि वह न जाने, ज़मीन आपसे आप फल लाती है, पहले पत्ती, फिर बालीं, फिर बालियों में तैयार दाने, फिर जब अनाज पक चुका तो वह तुरंत दरांती लगाता है क्योंकि काटने का समय आ पहुंचा. (मरक़स ४:२६-२९) वह राई के दाने की तरह है, कि जब ज़मीन में बोया जाता है तो ज़मीन की सब बीजों से छोटा होता है. मगर जब बो दिया गया तो उग कर सब तरकारियों से बड़ा हो जाता है, और ऐसी डालियां निकालता है कि हवा के परिंदे उसके साये (छाया) में बसेरा करें (३२)

इस आयत के पहले हिस्से में 'तौरात' के हवाले से सहाबा की व्यक्तिगत विशेषताएं ब्यान की गई हैं. और दूसरे हिस्से में 'बाईबल' के हवाले से उनकी सामूहिक विशेषताएं

असहाब-ए-रसूल की पहली व्यक्तिगत विशेषता यह बताई कि वे मुन्किरों (नकारने वालों) पर सख्त हैं. इसका मतलब यह है कि अल्लाह पर ईमान ने उनको एक बाउसूल इंसान बना दिया है. जो लोग खुदा के दीन को नकारने वाले हैं और बेउसूल ज़िंदगी गुजार रहे हैं, उनके साथ समझौता करना इनके लिये संभव नहीं. निजी स्वार्थ के लिये कभी वे बेउसूली या सिद्धांतहीनता का रवैया नहीं अपनाते.

'वे आपस में मेहरबान हैं,' का मतलब यह है कि अपने दीनी (मज़हबी) भाइयों के साथ मतभेद और शिकायत के अवसर पेश आने के बावजूद वह हमदर्दी और मेहरबानी के रवैये पर क़ायम रहते हैं. 'दीन' से बाहर वालों के साथ कोई मामला करते हुए सैद्धांतिक टकराव का मसला पेश आता है, वहां वे बिलकुल बेलचक (सख्त) साबित

होते हैं. अपने हममज़हब लोगों के बीच रहते हुए शिकायत की स्थिति पैदा होती है मगर वें शिकायतों और तल्ख़ियों को नज़र अंदाज़ करके सद्व्यवहार की रविश पर क़ायम रहते हैं.

'वह रुकूअ और सज़्दे में रहते हैं,' यानी वे नमाज़ क़ायम करने वाले हैं. उनके दिन उनकी रातें अल्लाह के आगे झुकने में और उसकी इबादत करने में बसर होती हैं.

'वह अल्लाह की दया और उसकी रज़ामंदी के तालिब हैं,' यानी उनके लिये सबसे ज्यादा प्रिय वह वांछित चीज है, जो अल्लाह के पास है. वह अल्लाह की याद में और अल्लाह से दुआ व याचना में अपना समय गुज़ारते हैं.

'उनकी निशानी उनके चेहरों पर हैं'. यानी उनके दिल का अल्लाह की तरफ़ झुकाव उनके चेहरों पर सत्कार और गंभीरता के रूप में व्यक्त हुआ है. खुदा के साथ गहरा लगाव उनके चेहरों पर रब्बानी झलक के रूप में दिखाई देता है यह उनकी व्यक्तिगत विशेषता है.

'सहाबा' की व्यक्तिगत विशेषताओं की चर्चा के बाद इन विशेषताओं के सामूहिक परिणाम को बीज की मिसाल देकर बताया गया है. बीज ज़मीन में बो दिया जाये तो वह बढ़ते-बढ़ते वृक्ष बन जाता है. इस तरह चर्चित विशेषताएं जब मानवीय लोगों में पैदा हो जाएं, तो वह बाहरी दुनिया को प्रभावित करने लगते हैं. यह क्रिया जारी रहती है. यहां तक कि वह इस इन्कलाब (परिवर्तन) तक पहुंच जाता है जिसका एक कामिल (स्नातक) नमूना असहाब-ए-रसूल रसूल के मित्रों के रूप में इतिहास में स्थापित हुआ.

## सत्य की स्वीकृति

अबु-हुरयरा रजि० बयान करते हैं कि जब रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की वफ़ात (मौत) हुई, तो उमर बिन अल-खत्ताब खड़े हुए, उन्होंने कहा कि बहुत से मुनाफ़िक़ यह गुमान कर रहे हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का निधन हो गया. मगर खुदा की क़सम रसूलुल्लाहु अलैहि वसल्लम की मौत नहीं हुई है. बल्कि वह अपने रब के पास गये हैं, जैसे मूसा बिन इमरान गये थे. वह अपनी क़ौम के बीच से चालीस दिन के लिये ग़ायब हो गये थे, फिर उनकी तरफ़ वापस आए जब यह कहा जाने लगा कि वह मर गये. खुदा की कसम, रसूलुल्लाह ज़रूर उसी तरह वापस आएंगे. फिर आप उन लोगों के हाथ और पांव काटेंगे, जिनको यह गुमान है कि आप की मौत हो गई है.

अबू बकर को ख़बर हुई तो वह आए और मस्जिद के दरवाज़े पर उतरे, उस वक़्त उमर लोगों के सामने तक़रीर कर रहे थे. अबू बकर रजि० सीधे आपके हुजरे में गये. अबु-बकर ने आपके चेहरे से चादर उठाई और उसे बोसा दिया, फिर कहा कि मेरे बाप और मां आप पर कुरबान, अल्लाह ने जो मौत आपके लिये भाग्य में लिखा था, वह आप पर आ चुकी. इसके बाद अब आप पर मौत की मुसीबत आने वाली नहीं. इसके बाद हज़रत अबू बकर रजि० ने आपके चेहरे पर चादर डाल दी और बाहर आये. हज़रत उमर रजि० बराबर लोगों के सामने बोल रहे थे. हज़रत अबू बकर रज़ि ने उनसे कहा कि ऐ! उमर ठहरो, खामोश हो जाओ. उमर ने चुप होने से इन्कार किया. फिर जब अबू बकर ने देखा के उमर चुप होने को तैयार नहीं हैं, तो वह लोगों की तरफ मुख़ातिब हुए, लोगों ने जब अबू बकर की आवाज़ सुनी तो सब उनकी तरफ़ ध्यान केंद्रित हुए और उमर को छोड़ दिया.

हज़रत अबू बकर ने हम्द-व-सना के बाद कहा- ऐ लोगो! जो शख्स मुहम्मद की इबादत करता था, तो मुहम्मद मर गये, और जो शख़्स अल्लाह की इबादत करता था तो अल्लाह ज़िंदा है, वह कभी मरने वाला नहीं. उसके बाद अबू बकर रज़ि० ने यह आयत पढ़ी:

'और मुहम्मद बस एक रसूल हैं. इनसे पहले बहुत से रसूल गुज़र चुके हैं. फिर क्या अगर वह मर जाएं या क़त्ल कर दिये जायें तो तुम उल्टे पांव फिर जाओगे. और जो आदमी फिर जाये वह अल्लाह का कुछ नहीं बिगाड़ेगा. और अल्लाह शुक्रगुज़ारों (एहसान मानने वालों) को बदला देगा. (सूरः आले इमरान १४४)

रावी (इतिहासकार) कहते हैं कि जब अबू बकर रज़ि ने यह आयत पढ़ी, तो ऐसा महसूस हुआ कि जैसे लोग यह जानते ही न थे कि कुरआन में यह आयत भी नाज़िल हुई है. अबू बकर रज़ि से इस आयत को सुन कर लोगों ने इसको ग्रहण कर लिया. उसके बाद यह आयत तमाम लोगों की ज़ुबान पर थी.

रावी कहते हैं कि उमर रज़ि ने कहा कि खुदा की क़सम जब मैंने अबू बकर को यह आयत पढ़ते हुए सुना तो मैं भयभीत हो गया. यहां तक कि मैं ज़मीन पर गिर पड़ा और मेरे दोनों पांव मेरा बोझ न उठा सके. और मैंने जान लिया कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का निधन हो गया. (सीरत-ए-इब्न-ए-हेशाम ४/३३४-३५)

उमर फ़ारूक़ उस वक्त इतने जोश में थे कि अबु बकर सिद्दीक़ की बातों से चुप नहीं हो रहे थे. उसके बाद जब उन्होंने कुरआन की एक आयत पढ़ दी तो अचानक वह ढ़ह पड़े. हालांकि अबु बकर सिद्दीक़ पहले भी कुछ शब्द बोल रहे थे, और अब भी उन्होंने कुछ अल्फ़ाज़ ही अपनी

ज़ुबान से निकाले थे. इस फ़र्क़ का सबब यह है कि पहले अल्फाज़ इंसान के शब्द थे, और दूसरे शब्द खुदा के अल्फाज़.

इससे सहाबा-ए-रसूल की एक निहायत अहम विशेषता सामने आती है, वह यह कि असहाब-ए-रसूल अल्लाह का हुक्म आते ही उसके आगे ढह पड़ने वाले लोग थे. आम इंसान क़्यामत के दिन रब्बुल आलमीन (सारे विश्व के रब) को देखकर ढह पड़ेगा. असहाब-ए-रसूल वह लोग थे इसी दुनिया में रब्बुल आलमीन को देखे बग़ैर उसके आगे ढ़ह पड़े. खुदा के मुन्किरों (नकारने वालों) पर जो कुछ मौत के बाद बीतने वाला है, वह असहाब-ए-रसूल पर मौत से पहले की ज़िंदगी में बीत गया. दूसरे लोग जिस चीज़ को मजबूरी के तहत कुबूल करेंगे उसे असहाब-ए-एरसूल ने खुद अपने स्वतंत्र फ़ैसले के तहत इख़्तियार कर लिया.

इंसान को मौजूदा दुनिया में इसी ख़ास इम्तिहान के लिये रखा गया है. यहां इंसान को आज़ादी दी गई है, मगर यह आज़ादी बराए आज़माइश है, न कि बराए इनाम. अल्लाह यह देखना चाहता है, कि कौन शख्स है, जो आज़ादी पाकर सरकश (घमंडी) हो जाता है और कौन है, जो आज़ादी पाने के बावजूद अल्लाह के आगे झुक जाता है.

रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के असहाब इसी खुदाई वांछना के व्यवहारिक नमूना थे. उन्होंने खुदा के हुक्म को व्यवहारिक रूप से अख़्तियार कर के इस बात को प्रदर्शित करके स्पष्ट किया कि आदमी को कैसा बनना चाहिये, और अपनी आज़ादी को उसे किस तरह इस्तेमाल करना चाहिये.

## अस्तित्वहीनता

कुरआन में बताया गया है कि अगर किसी मुसलमान की मौत का वक्त आ जाये और उसे अपनी संपत्ति के बारे में वसीयत करनी है, तो उसे चाहिये कि दो विश्वस्त व्यक्तियों को गवाह बनाकर वह अपनी वसीयत करे. इस सिलसिले में एहकाम (आदेश) बताते हुए कहा गया है कि बाद में गवाही देने के वक्त अगर यह बात मालूम हो कि उन दोनों गवाहों ने गवाही देने में कोई पक्षपात किया है तो उनकी जगह दूसरे दो शख्स विरासत के हक़्दारों में से खड़े हों, जो मृतक से ज्यादा नज़दीकी संबंध रखते हों. ये दूसरे दोनों आदमी क़सम खाकर कहें कि हमारी गवाही इन दोनों प्राथमिक गवाहों की गवाही से ज़्यादा सच्ची है.(सूरः अल-माइदा १०७)

इस आयत के एक टुकड़े का अनुवाद यह है – 'उनमें से जिनका कि हक़ दवाब

है, जो सबसे करीब हों मृतक के-' इस आयत के एक शब्द 'अलउलियान' के उच्चारण में मतभेद है. अल हसन ने इसे 'अल-अव्वलान' पढ़ा है. और इब्न-ए-सिरीन ने इसको 'अल-अव्वलीन' पढ़ा है. इस सिलसिले में एक रिवायत है:

अबु मिजलज़ से रिवायत है कि उबैइ बिन कअब ने यह आयत पढ़ी – मिनल्लज़ीनस्तहक़्क़ अलैहिमुल उलियान'. बस उमर ने उनसे कहा कि – 'तुमने झूठ कहा'. उन्होंने कहा कि तुम खुद ज्यादा झूठे हो. यह सुन कर एक व्यक्ति ने कहा कि तुम अमीरुलमोमिनीन को झूठा कहते हो. उन्होंने कहा कि मैं तुमसे ज़्यादा अमीरुलमोमिनीन के हक़ का आदर करता हूं. लेकिन मैंने उनको अल्लाह की किताब की तस्दीक़ (पुष्टि) के मामले में झुठलाया है. मैंने किताबुल्लाह के खंडन (या उसे झुठलाने) के मामले में अमीरुल मोमिनीन की पुष्टि नहीं की. उमर ने यह सुनकर कहा कि उन्होंने सच कहा (हयातुस्सहाबा २/७४-७५).

इस घटना में एक मित्र ने दूसरे मित्र पर एक सहाबी ने दूसरे सहाबी की सख़्त आलोचना की, जोकि समय की सल्तनत का हुक्मरान था. मगर आलोचक सहाबी का मामला यह था कि सख़्ततरीन शब्दों में आलोचना के बावजूद आलोचना के संदर्भ 'सहाबी' के व्यक्तिगत सम्मान में उनके अन्दर कोई कमी नहीं आई. और दूसरी तरफ़ आलोचना के शिकार 'सहाबी' की स्थिति यह थी कि सर्वोच्च पद पर होने के बावजूद उन्होंने इस कड़ी आलोचना का बुरा नहीं माना.

यह विशेषता सामूहिक और सामुदायिक जीवन या संगठन के लिये आवश्यक है. हक़ीक़त यह है कि इस विशेषता के बिना न कोई समाज बेहतर समाज बन सकता है, न उसके अंदर संगठन और एकता का माहौल बन सकता है. मगर यह बहुमूल्य विशेषता बहुत नादिरो नायाब और अनोखी है. और सामूहिक समाज के धरातल पर इतिहास में 'सहाबा' के अलावा कहीं और पाई नहीं गई .

सामूहिक ज़िंदगी में बार-बार ऐसा होता है कि एक को दूसरे के खिलाफ़ बोलना पड़ता है. यह बोलना ज़िंदगी की एक लाज़मी ज़रूरत है. मगर बोलने वाला मामले को संदर्भित व्यक्ति से अलग करके नहीं देख पाता. इसलिये वह मामले पर आलोचना करने के साथ संदर्भित व्यक्ति से उखड़ भी जाता है. मगर असहाब-ए-रसूल इस दृष्टि से एक ऐतिहासिक अपवाद थे. असहाब-ए-रसूल के बीच आलोचना का आम रिवाज था. मगर आलोचना करने वाला हमेशा 'बात' पर आलोचना करता था. वह आलोचना के संदर्भ से जुड़े व्यक्ति के व्यक्तित्व से न तो नफ़रत करता था, न उसके आदर में कोई कमी करता था.

यहीं हाल आलोचित व्यक्ति का भी था. वह सख़्त से सख़्त आलोचना को

सुनता था. मगर वह आलोचना की बाहरी सख्ती को नज़रअंदाज़ करते हुए वास्तविक आलोचना पर सोचने लगता था कि वह स्वीकारयोग्य है या कुबूल करने के योग्य नहीं है.

आलोचना की चोट बहुत कड़ी चोट है. अपने ख़िलाफ़ आलोचना सुनते ही आदमी के अंदर एक आग सी लग जाती है, मगर सहाबाकेराम इससे बहुत बुलंद थे. सहाबा का हाल यह था कि वह न सिर्फ़ अपने ख़िलाफ़ आलोचना को ठंडे दिमाग़ से सुनते थे, बल्कि आलोचक के सख़्ततरीन शब्दों की भी उन्हें कोई परवाह नहीं होती थी.

इसका कारण सहाबाकेराम का देवत्त्व था. उनके ईमान ने उनको ऐसे सर्वोच्च चिंतन के स्तर पर पहुंचा दिया था कि उसके बाद हर चीज़ उन्हें हेय (छोटी) दिखाई देती थी. वह सर्वोच्च यथार्थ में इतना ज्यादा गुम हो चुके थे कि वह न व्यक्तिगत तारीफ़ से खुश होते थे और न व्यक्तिगत आलोचना पर ग़मगीन होते थे. वह हर बात की हैसियत से ग़ौर करते थे चाहे वह उनकी पसंद की बात हो या नापसंदीदगी की बात. वह हर घटना को उसकी असलियत के ऐतिबार से देखते थे न कि इस ऐतिबार से कि वह उनके अनुकूल है या उनके प्रतिकूल.

## अज्ञानता का स्वाभिमान नहीं

कुरआन के सूरः अल-फ़तह में अल्लाह की उस विशेष मदद की चर्चा है, जो असहाब-ए-रसूल को हासिल हुई. इसके नतीजे में यह हुआ कि उन्होंने 'सिरात-ए-मुस्तक़ीम' (सीधे रस्ते) को पा लिया. वे दुशमनों के हाथ से सुरक्षित हो गये. ज़मीन पर दीन-ए-खुदावंदी का अवतरण हुआ. विरोधियों की बहुतात के मुक़ाबले में उन्हें विजय प्राप्त हुई. असहाब-ए-रसूल का वह कौन सा कर्म था जिसके नतीजे में वह अल्लाह की इस विशेष रहमत और मदद के अधिकारी क़रार पाये. इसका ज़िक्र सूरः अल-फ़तह की विभिन्न आयतों में मौजूद है. एक आयत यह है:

'जब इन्कार करने वालों ने अपने दिलों में स्वाभिमान पैदा किया, 'अज्ञानता का स्वाभिमान'. फिर अल्लाह ने अपनी तरफ से सुख नाज़िल किया अपने रसूल पर और ईमान वालों पर और अल्लाह ने उनको 'तक़्वा' की बात (परहेजगारी और संयम की बात) पर जमाये रखा, और वह उसके ज्यादा हक़दार और उसके योग्य थे. और अल्लाह हर चीज का जानने वाला है. (सूरः अल-फ़तह २६)

इस आयत में असहाब-ए-रसूल के उस रवैये का ज़िक्र है, जो उन्होंने 'हुदैबिया'

की घटना के अवसर पर इख़्तियार किया. उस रवैये को यकतरफ़ा सब्र (धैर्य) या प्रज्वलन के बावजूद भड़कने से बचना कह सकते हैं.

६, हिज्री में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम अपने तक़रीबन डेढ़ हज़ार मित्रों (असहाब) के साथ मदीना से मक्का के लिये रवाना हुए ताकि वहां पहुंच कर 'उमरा' (हज का एक दूसरा अवसर) अदा करें आप मक्का के क़रीब हुदैबिया के मुक़ाम पर पहुंचे थे कि मक्का के मुश्रिकों (बहु ईश्वरवादियों) ने आगे बढ़कर आपको रोक दिया और कहा कि हम आपको मक्का में दाख़िल नहीं होने देंगे. उन्होंने इस मामले को अपने लिये मर्यादा और सम्मान का मसला बना लिया.

आपको वापसी पर मजबूर करने के लिये उन्होंने विभिन्न प्रकार की बर्बर कार्रवाई की. मगर रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम और आपके असहाब हर मौक़े पर जवाबी कार्रवाई करने से बचते रहे, ताकि दोनों पक्षों में टकराव की नौबत न आये. इस बीच मक्का वालों की तरफ़ से विभिन्न प्रतिनिधिमंडल बातचीत के लिये आते रहे. आख़िरकार यह निश्चित हुआ कि दोनों पक्ष के बीच एक दीर्घ अवधि का समझौता हो जाये, ताकि दोनों अपनी-अपनी हद में रहें और कोई किसी पर ज्यादती न कर सकें

'हुदैबिया' (एक जगह का नाम जो मक्का के पास है) की घटना का विस्तृत ब्यौरा सीरत की किताबों में देखा जा सकता है. संक्षेप यह कि आखरी गंतव्य पर जब समझौता लिखा जाने लगा तो कुरैश कबीले के मक्का वाले प्रतिनिधि की ओर से आतंक का रवैया अख्तियार किया गया. रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने समझौते के शुरू में बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम लिखवाया. कुरैश के प्रतिनिधि ने कहा कि हम इसको नहीं मानते आप 'बिस्मिकल्लाहुम' लिखिये. फिर आपने 'मुहम्मद रसूलुल्लाह की तरफ से' लिखवाया. मगर मक्का निवासी कुरैश ने उसे भी रद्द करवा दिया और कहा कि मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह लिखिये. यह बातें बिलकुल दिल को चुभने वाली थीं मगर सहाबा पर अल्लाह ने 'सकीनत' (धीरज) उतारा और वे इन शर्तों पर राज़ी हो गये.

इसी तरह कुरैश के प्रतिनिधि ने लिखवाया कि मक्का का कोई आदमी इस्लाम कुबूल करके मदीना चला जाये तो आप उसको हमारी तरफ़ लौटाने के पाबंद होंगे. और अगर मदीने का कोई आदमी हम पकड़ लें तो हम उसको आपकी तरफ़ नहीं वापस करेंगे. यह एकतरफ़ा शर्त अपमान की सीमा तक असह्य थी, मगर रसूल के असहाब ने अल्लाह की ख़ातिर इसको भी बर्दाश्त कर लिया. समझौते की किताबत

के दौरान मक्का के एक मुसलमान अबु जिन्दल वहां आ गये. उनके पांव में लोहे की बेड़ियां पड़ी हुई थीं और उनका शरीर जख़्मी हो रहा था. कुरैश के प्रतिनिधि ने कहा कि समझौते के मुताबिक़ अबु जिन्दल को हमारी तरफ़ वापस कीजिये. अबु जिन्दल ने कहा कि क्या मैं काफ़िरों की तरफ़ लौटाया जाऊंगा, ताकि वे मुझे 'फ़ितना' (उपद्रव की आग) में डाल दें यह बड़ा नाज़ुक लम्हा था. मगर अपने खौलते हुए जज़्बात को दबा कर असहाब-ए-रसूल इस मांग पर भी राज़ी हो गये.

यह सहाबा के व्यक्तित्व का अनोखा पहलू था. वह निरंतर भड़काये जाने के बावजूद नहीं भड़के. बर्बरता के बावजूद उन्होंने जवाबी कार्रवाई नहीं की. 'उमरा' को सम्मान और प्रतिष्ठा का मसला बनाये बग़ैर वे हुदैबिया से वापसी पर राज़ी हो गये. उन्होंने प्रतिपक्ष की यकतरफ़ा शर्तों को मान कर जंग की स्थिति को अमन की स्थिति में बदल दिया.

हुदैबिया की घटना के दौरान प्रतिपक्ष ने असह्य स्थितियां पैदा की मगर असहाब-ए-रसूल उसे सहते रहे. विरोधियों के अज्ञानता भरे स्वाभिमान का जवाब उन्होंने इस्लामी धैर्य के रूप में दिया. असहाब-ए-रसूल का यह रवैया अल्लाह तआला को पसंद आया. उसने अपने सर्वोत्तम उपाय से ऐसे रास्ते खोले कि असहाब-ए-रसूल के लिये यह संभव हो गया कि वे मक्का पर विजय प्राप्त कर लें. यहूदियों की जड़ें काट दें, और पूरे अरब में इस्लाम को एक बड़े वर्चस्व वाले 'दीन' (मज़हब) की हैसियत से क़ायम कर दें

## अल्लाह की किताब के सामने रुकना

कुरआन की एक शिक्षा वह है जिसको ए'राज़ कहा जाता है. यानी नादान लोगों के भड़काने वाली बातों से नहीं भड़कना. यहां तक कि अगर इस क़िस्म की बात को सुन कर गुस्सा आ जाये तो उसे शैतानी भ्रम समझ कर उसके लिये अल्लाह से पनाह मांगना और हर हाल में नज़रअंदाज़ करने के रवैये पर क़ायम रहना. इस सिलसिले में कुरआन का हुक्म यह है:

दरगुज़र करो और नेकी का हुक्म दो और जाहिलों से ए'राज़ (बचा) करो, और अगर तुमको कोई अंदेशा (या भ्रम) शैतान की तरफ़ से आये तो अल्लाह की पनाह चाहो. बेशक वह सुनने वाला जानने वाला है. जो लोग अल्लाह का डर रखते हैं, जब उनको शैतान के असर से बुरा ख्याल छू जाता है, तो वह फौरन चौंक पड़ते

हैं, और फिर उसी वक्त उन्हें सूझ आ जाती है. और जो लोग शैतान के भाई हैं, वह उनको गुमराही में खींचे चले जाते हैं, फिर वह कमी नहीं करते. (सूरः अल-आ'राफ़ १९९-२०२) ·

सहीहुल बुखारी, किताबुत तफ़्सीर (सूरः अल-आ'राफ़) में अध्याय - 'ख़ुजिल अफ़्व वामुर बिल मांरूफ़ व आरिज़ अनिल जाहिलीन' के तहत एक घटना का पुनर्लेखन हुआ है. यह उमर फ़ारूक़ रज़िअल्लाहु अन्हु की ख़िलाफ़त के ज़माने की घटना है. वह घटना यह है:

उबैदुल्लाह बिन अब्दुल्लाह बिन ओ'तबा कहते हैं कि अब्दुल्ला बिन अब्बास रज़ि ने उनसे बयान किया. उयैयना बिन हिसन बिन होज़ैफ़ा मदीना आए और अपने भतीजे अल-हुर बिन क़ैस के मकान पर ठहरे. अल-हुर बिन क़ैस उन लोगों में से थे, जिनको उमर अपने क़रीब जगह देते थे. ओयैयना ने अपने भतीजे से कहा कि ऐ मेरे भतीजे, तुमको अमीर-उल-मोमिनीन के यहां निकटता प्राप्त है. मेरी उनसे मुलाक़ात करवा दो. इसके बाद अलहुर ने उमर रज़ि से मुलाक़ात की इजाज़त मांगी. उन्होंने इजाज़त दे दी.

उयैयना जब उमर रज़ि के यहां पहुंचे, तो उन्होंने कहा: ऐ ख़त्ताब के बेटे! खुदा की क़सम तुम हमको न कुछ माल देते हो, और न हमारे बीच इंसाफ़ करते हो, उमर यह सुन कर गुस्से में आ गये और उन पर कार्रवाई करनी चाही. उस वक्त अल-हुर बिन क़ैस ने उनसे कहा कि ऐ अमीरूल मोमिनीन अल्लाह तआला ने कुरआन में अपने नबी को यह हुक्म दिया है कि तुम लोगों को माफ कर दो और 'मा'रूफ़' का हुक्म दो और जाहिलों से ए'राज़ करो. (अल-आ'राफ़ १९९) और यह आदमी निःसन्देह जाहिलों में से है.

रावी कहते हैं कि खुदा की कसम उसके बाद उमर ने ज़रा भी बात आगे नहीं बढ़ायी. जबकि उन्होंने कुरआन की यह आयत उनके सामने पढ़ दी. और उमर खुदा की किताब पर बहुत ज़्यादा रूक जाने वाले थे.

यह मिसाल असहाब-ए-रसूल की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता को बताती है. वह यह कि असहाब यानी मित्रगण अल्लाह की किताब के सामने फ़ौरन ठहर जाने वाले थे. खुदा का हुक्म सामने आने के बाद वह अपने हाथ और अपने पांव और अपनी ज़ुबान को अविलंब रोक लेने वाले थे. हक (सत्य) की एक दलील उनके चलते हुए कदमों में बेड़ी डाल देने के लिये काफी थी, चाहे इसके पीछे कोई महसूस और भौतिक शक्ति मौजूद न हो.

यह एक इंतिहाई नायाब विशेषता है. जिसका प्रदर्शन सहाबाकेराम के ज़रिये

दुनिया के सामने हुआ. जब आदमी के अन्दर गुस्सा भड़क उठे. जब उसके लिये 'मैं' का मसला पैदा हो जाये तो उस वक्त वह कोई दलील सुनने के लिये तैयार नहीं होता. सहाबाकेराम वह लोग थे, जिनको सख्त हैजानी (मजनूंवाली) स्थिति में भी कुरआन की एक आयत खामोश कर देने के लिये काफ़ी होती थी.

मौजूदा दुनिया में खुदा का हुक्म शब्द की सूरत में सामने आता है, मगर एक शब्द का आदेश सुनकर यह हाल होता था गोया कि खुद खुदा अपनी तमाम ताकत के साथ उनके सामने आकर खड़ा हो गया हो.

जिस आदमी के साथ मतभेद पैदा हुआ उसके साथ न्याय का रवैया बरतना, जिस आदमी ने अना(अहम) पर चोट लगाई है, उसके मुकाबले में सब्र कर लेना. जिस आदमी ने अपने बेढ़ेपन के कारण गुस्सा भड़का दिया है, उसके ख़िलाफ़ अपने गुस्से को बर्दाश्त कर लेना, जिस आदमी ने अपमान करने का अंदाज अपनाया है, उससे इंतेक़ाम न लेना, यह सब सर्वोत्तम मानवीय विशेषताएं हैं. सहाबाकेराम वह मिसाली लोग हैं, जो इन विशेषताओं में कमाल की हद तक पूरे उतरे.

## अल्लाह की सुन्नत

ग़जव-ए-बद्र के मौक़े पर रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने अपने असहाब पर नजर डाली तो वह तीन सौ से कुछ ज्यादा थे. फिर आपने मुश्रिकों की तरफ़ देखा तो वह एक हज़ार से ज्यादा थे. उसके बाद रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम क़िबला रू हो कर सज्दे में गिर पड़े. और आपके ऊपर आपकी चादर थी. आपकी ज़ुबान पर ये अल्फ़ाज़ जारी हो गये:

'ऐ अल्लाह उस वायदे को पूरा फ़रमा जो तूने मुझसे किया है. ऐ अल्लाह अगर तू इस्लाम वालों को हलाक (ख़त्म) कर दे तो, उसके बाद ज़मीन पर कभी तेरी इबादत न होगी' (अल-बिदाया वन्निहाया ३/२७५)

रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के निधन के बाद ओसामा की फ़ौज की शाम (सीरिया) की तरफ़ रवानगी इस्लामी इतिहास की महत्वपूर्ण घटना है. उस वक्त अरब में बग़ावत फैल गई थी. मगर खलीफ़ा प्रथम हज़रत अबू बकर सिद्दीक़ के उस मोमिनाना क़दम ने नये सिरे से इस्लाम का दबदबा क़ायम कर दिया. उस घटना की चर्चा करते हुए अबू हुरयरा रजिअल्लाहु अन्हु ने कहा:

'उस खुदा की कसम जिसके सिवा कोई मा'बूद (पूजनीय) नहीं अगर (रसूलुल्लाह

के बाद) अबू बकर को ख़लीफ़ा न बनाया जाता तो अललाह की इबादत न हो पाती.' (अल-बिदाया वन्निहाया ६/३०५)

यह दोनों बातें बज़ाहिर बहुत अजीब हैं, चुनांचे हज़रत अबू हुरयरा ने जब यह कहा तो सुन्ने वाले बोले कि - ऐ अबू हुरयरा चुप रहो.' मगर ये शब्द ठीक घटना की सच्चाई की अभिव्यक्ति थे.

अस्ल यह है कि इस कौल का संबंध अल्लाह की सुन्नत से है, न कि अल्लाह की कुदरत से. अल्लाह के लिये बिला शुब्हा यह संभव है कि वह हवाओं के ज़रिये तमाम मुश्रिकों (बहू ईश्वरवादियों) को हलाक (खत्म) कर दे और एक लफ्ज 'कुन' के ज़रिये तमाम इंसानों को अपना इबादत गुज़ार बना दे. मगर मौजूदा इम्तिहान की दुनिया में खुद अललाह के अपने फैसले के आधार पर ऐसा नहीं होता. यहां सारा काम कारण और 'होने' के परदे में अंजाम दिया जाता है – उपरोक्त कथन (सूक्ति/चयन) का मतलब यह है कि कानून-ए-इलाही के तहत ऐसा नहीं होगा, न यह कि संभावना के परिप्रेक्ष्य में ऐसा नहीं हो सकता.

रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की जुबान से दुआ के वक्त जो शब्द निकले, या हज़रत अबू हुरयरा ने जो बातें कही, उनसे 'सहाबा' के समूह की अहमियत (महता) का अंदाज़ा होता है. अस्ल यह है कि सहाबा आम तरह के इंसान न थे. यह एक पृथक टीम थी, जो अरब के रेगिस्तान में विशेष आयोजन के जरिये तैयार की गई थी. अगर यह इंसान ज़ाया (बर्बाद/नाकारे) हो जाते तो दुबारा इतिहास वहीं वापस चला जाता जहां वह सहाबा के दौर से पहले था.

कुरआन के मुताबिक अल्लाह तआला को वांछित था कि दुनिया से फितना (फसाद/हंगामा) खत्म हो और खुदावंद के मज़हब की विश्व व्यापी अभिव्यक्ति हो. यानी दुनिया से बहू ईश्वरवाद (शिर्क) का वर्चस्व खत्म हो और तौहीद (एक ईश्वरवाद) का वर्चस्व स्थापित हो जाये. यह इतिहास की मुश्किल योजना थी. क्यों कि इसको मुकम्मल तौर पर कारणों के दायरे में अंजाम देना था. यह गोया एक खुदाई घटना को इंसानी सतह पर अभिव्यक्त करना था.

इसके लिये ऐसे हकीकत को पहचानने वाले इंसान दरकार थे जो एक समकालीन पैग़ंबर को पहचान कर हमातन (तन-मन से) उसके साथी बन जाए. इसके लिये ऐसे परिपक्व चरित्र के लोग वांछित थे जो, एक बार संकल्प के बाद फिर कभी संकल्प से विमुख न हों. चाहे उस राह में उनका सब कुछ लुट जाये. उसके लिये ऐसा बामक़सद गिरोह दरकार था जो हक़ के मक़सद के सिवा हर दूसरी चीज को दूसरा दर्जा दे दे. इसके लिये ऐसे बहादुर इंसानों की जरूरत थी जो चट्टानों से टकरा जाये और

उस वक्त तक न रुकें जब तक अपने मिशन को पूरा न कर लें. इसके लिये ऐसी सर्वोत्तम आत्मा वाले लोग दरकार थे जो मतभेद के बावजूद संगठित रहें और शिकायतों के बावजूद आपसी सहयोग समाप्त न करें

असहाब-ए-रसूल इसी तरह के नादिर-व-नायाब इंसान थे. वह ख़ास इसी मक़सद के लिये ढ़ाई हज़ार साल के प्रशिक्षण पाठ्यक्रम के तहत बनाये गये थे. अगर उनके ज़रिये उपरोक्त मिशन अपनी संपूर्णता को न पहुंचता तो दुबारा एक और इब्राहीमी व्यक्तित्व की ज़रूरत होती. और इतिहास को फिर ढ़ाई हज़ार साल तक इंतजार करना पड़ता कि वांछित प्रकार की एक टीम बने और उसे उपयोग करके खुदा के दीन की विश्वव्यापी अभिव्यक्ति की जाये.

असहाब-ए-रसूल इंसानी इंतिहास के वे चुने हुए लोग थे जिनके व्यक्तित्व पर इंसानी संकल्प और खुदाई योजना दोनों एक हो गये थे. ऐसे लोग इतिहास के हजारों साल के कर्म के बाद पैदा होते हैं. अगर वह अपने मक़सद की तकमील (पूरा करने) से पहले समाप्त हो जाएं तो इतिहास की यात्रा रूक जायेगी.

# 'मैं' से मुक्ति पाना

ग़ज़व-ए-बद्र २ हिज्री में पेश आया. अचानक स्थिति के तहत रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को मक्का के मुश्रिकों से मुक़ाबले के लिये निकलना पड़ा. यह बड़ा नाज़ुक लम्हा था. क्योंकि इस मुकाबले के लिये मुहाजिरों की संख्या बहुत कम थी. चाहने वाले अंसारियों का मामला यह था कि वे सिर्फ बैअत के अनुकूल मदीने के अंदर आपके समर्थन के लिये प्रतिबद्ध थे. मदीने से बाहर निकल कर दुश्मनों से मुकाबला करना उनकी बैअत के साथ शर्त नहीं था.

रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने लोगों को जमा करके फरमाया कि ऐ लोगों, मुझे मशवरा दो. जवाब में मुहाजिरों के बीच से कुछ लोगों ने उठकर आपको पूरे समर्थन का विश्वास दिलाया. आपने कई बार कहा कि ऐ लोगों मुझे मशवरा दो और हर बार मुहाजिरीन उठ कर जवाब देते रहे.

आखिर अंसारियों को एहसास हुआ कि आप शायद हमारा विचार जानना चाहते हैं. यह एहसास होते ही तुरंत उनके सरदार उठे और कहा कि ऐ खुदा के रसूल, शायद आपका इशारा हमारी तरफ है. आपने फरमाया कि हां. उन्होंने कहा कि अब हम आपके हाथ पर बैअत कर चुके हैं. यह असंभव है कि हम आपको अकेला छोड़ दें. ऐ खुदा के रसूल आप जो चाहते हैं उसे कर गुज़रिये. हम सब आपके साथ

हैं. खुदा की कसम अगर आप यहां से रवाना हों और चलते-चलते समुंदर में दाखिल हो जाएं तो हम भी आपके साथ समुंदर में दाख़िल हो जाएंगे. हममें से कोई शख़्स पीछे न रहेगा. (अल-विदाया वन्निहाया ३/२६२-६३)

इसी तरह सुलह-ए-हुदैबिया के बाद जब अमन हुआ तो रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने इरादा फ़रमाया कि अरब के आस-पास के हाकिमों और बादशाहों को निमंत्रण-पत्र रवाना करें. आपने सहाबा को जमा किया और फरमाया कि मैं चाहता हूं कि तुममें से कुछ लोगों को निमंत्रण-पत्र के साथ अज्मी (ग़ैर अरब) बादशाहों की तरफ़ भेजूं. बस तुम लोग मेरे साथ मतभेद न करो जिस तरह इस्राईली संतानों ने ईसा बिन मरयम के साथ मतभेद किया था. सहाबा ने कहा कि ऐ खुदा के रसूल, हम आपसे किसी मामले में कभी मतभेद न करेंगे. आप हमको हुक्म दीजिये और हमको जहां चाहिये वहां भेजिये. (अल-बिदाया वन्निहाया ४/२६८)

यह घटना असहाब-ए-रसूल की एक महत्वपूर्ण विशेषता को रेखांकित करती है. यह विशेषता है – 'मैं' से मुक्ति पाकर किसी व्यक्तित्व का साथ देना.

संपूर्ण इतिहास का यह अनुभव है कि लोग प्रारंभिक भावनाओं के तहत किसी का साथ देने को तैयार हो जाते हैं मगर जब प्रतिकूल स्थितियां पेश आती हैं तो वे तुरंत मतभेद प्रकट करके अलग हो जाते हैं. मसलन असहाब-ए-रसूल (अंसार) बद्र की जंग के अवसर पर कह सकते थे कि हमने गृह स्तर पर बचाव सुरक्षा का वायदा किया है, हमने बाहरी मुक़ाबले के लिये आपसे वायदा नहीं किया. (अल-बिदाया वन्निहाया ३/२६२) मगर उन्होंने इस पहलू को नज़रअंदाज़ करके आपका साथ दिया. जबकि यह साथ देना बजाहिर मौत की गुफा में कूदने जैसा था. क्योंकि दुश्मन के पास एक हजार लोगों की शक्तिशाली और हथियारों से लैस सेना थी. और रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की तरफ ३१३ लोगों की एक कमज़ोर जमाअत थी.

इसी तरह हुक्मरानों के नाम निमंत्रक प्रतिनिधियों को भेजने के सिलसिले में वह यह कह सकते थे कि अभी तो अरब में भी पूरी तरह इस्लाम नहीं फैला. अभी घरेलू स्तर पर राजनीतिक मजबूती के दृष्टि से हमारे सामने बहुत से मसले हैं, ऐसी हालत में बाहरी देशों को प्रतिनिधियों को भेजने का क्या अवसर हैं?

मगर असहाब-ए-रसूल ने इस तरह के हर ख्याल को अपने दिल से निकाल दिया, उन्होंने आपत्ति को आपत्ति नहीं बनाया. उन्होंने 'मैं' को खुद से मुक्त कर के आपका सहयोग किया. उन्होंने सामूहिक हितों के लिये वैयक्तिक तकाजों को नज़रअंदाज कर दिया. मतभेद और शिकायतों के हर मामले को अल्लाह के हवाले करके वे

इस पर राजी हो गये कि वे रसूल-ए-खुदा के नेतृत्व में इस्लाम की सेवा करते रहेंगे, यहां तक कि उसी हाल में मर जाएंगे.

एक चिंतक ने कहा है कि अगर तुम्हारे पास बेहतरीन आपत्ति है तब भी तुम उसको इस्तेमाल न करो.

If you have good excuse don't use it.

पश्चिमी चिंतक ने यह बात आदर्श के रूप में कही थी. मगर इस आदर्श को पहली बार जिन लोगों ने व्यवहारिक घटना बनाया वे असहाब-ए-रसूल थे. उन्होंने मतभेद को नज़रअंदाज करके इत्तिहाद 'संगठन' पर बल दिया. उन्होंने शिकायतों को भुला कर साथ दिया. उन्होंने प्राप्ति की उम्मीद के बिना ही 'दिया'. उन्होंने श्रेय लेने का विचार अपने दिमाग़ से निकाल कर कुर्बानियां दीं. आम लोग जिस हद पर रूक जाते हैं, उन हदों पर रूके बिना वह आगे बढ़ गये.

# रसूल के मित्रगण

ख़ालिद बिन वलीद और अब्दुर्ररहमान बिन औफ़ के बीच किसी बात पर मतभेद पैदा हुआ. इस अवसर पर हज़रत खालिद की ज़ुबान से अब्दुर्ररहमान बिन औफ़ के लिये कुछ सख्त बातें निकल गई. रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने सुना तो फ़रमाया:

'मेरे असहाब (मित्रों) को बुरा न कहो, मेरे असहाब को बुरा न कहो, उस ज़ात की क़सम जिसके कब्ज़े में मेरी जान है, अगर तुम में से कोई शख्स 'ओहद' पहाड़ के बराबर सोना भी खर्च कर दे तो वह उनके एक मुद या उसके आधे के बराबर भी नहीं पहुंचेगा'. (मुस्लिम, बाब-ए-तहरीम सब-अल-सहाबा)

सहाबाकेराम की वह क्या खास विशेषता थी, जिसके आधार पर उन्हें यह विशिष्ट स्थान मिला. कुरआन के शब्दों में वह थी- मुश्किल लम्हों में अनुकरण करना (अल-तौबा ११७) फ़त्ह (विजय) का दौर आने से पहले बलिदान पेश करना (अल-हदीद १०)

आज पैग़ंबर-ए-इस्लाम की रिसालत एक प्रामाणिक रिसालत (पैग़ंबरी) है. आपका नाम सर्वोच्च महानता की पहचान बन चुका है. आज आपके नाम पर उठने वाले को हर तरह की इज़्ज़त और हर तरह के भौतिक लाभ प्राप्त होते हैं. ऐसा आदमी तुरंत क़ौम के बीच 'नेता' का मुक़ाम पा लेता है. मगर जिस वक्त सहाबाकेराम ने आपका साथ दिया, उस वक़्त तमाम संभावनाएं भविष्य के गर्भ में छिपी हुई थीं.

वह घटना बन कर लोगों के सामने नहीं आई थी.

सहाबाकेराम का कारनामा यह है कि उनहेंनि हाल के पैग़ंबरों को उसके भविष्य की महानताओं के साथ देखा, उन्होंने बज़ाहिर एक आम इंसान को उसकी पैग़ंबराना आचरण के साथ ढूंढ निकाला. उन्होंने उस वक्त पैग़ंबर का साथ दिया जब कि पैग़ंबर का साथ देना पूरी कौम में नकारात्मक व्यक्ति बन जाना था. जब पैग़ंबर का समर्थन करने का नतीजा यह होता था कि आदमी अपने राष्ट्र, अपने समुदाय और अपनी बिरादरी के समर्थन से महरूम हो जाये.

सहाबाकेराम का ईमान एक खोज थी. आज के मुसलमानों का ईमान एक राष्ट्रीय अनुसरण है. इन दोनों में उतना ही फ़र्क़ है, जितना ज़मीन और आसमान में.

लबीद बिन रबीया (मृत्यु ४१, हिज्री) अरब के बड़े शायरों में से थे. वे असहाब-ए-विशिष्ट में गिने जाते हैं. उन्होंने रसूलूल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से मुलाकात की और आपके हाथ पर इस्लाम कुबूल किया. इस्लाम कुबूल करने के बाद उन्होंने शायरी छोड़ दी. किसी ने पूछा कि आपने शायरी क्यों छोड़ दी? उन्होंने जवाब दिया. -'क्या कुरआन के बाद भी?'

हज़रत लबीद का यह वचन बज़ाहिर कोई असाधारण वचन नज़र नहीं आता. क्यों कि आज लोगों के जहनों पर कुरआन की महानता इतनी ज्यादा छाई हुई है कि यह बिलकुल एक फितरी बात (प्राकृतिक बात) मालूम होती है कि कोई जाति कुरआन के सर्वोत्तम साहित्य से प्रभावित होकर शायरी छोड़ दे. मगर इस्लाम के प्रारंभिक काल में जब कि हज़रत लबीद ने ऐसा किया, उस वक्त यह एक बहुत ही असाधारण बात थी.

इस्लाम के प्रारंभिक काल में कुरआन की हैसियत एक आम किताब जैसी थी. उस वक्त वह लोगों के बीच जुबानी किताब बनी हुई थी, उस वक्त तक कुरआन की पुश्त (पीठ) पर वह घटनात्मक महानताएं और ऐतिहासिक सच्चाईयां जमा नहीं हुई थीं, जो आज उसकी पुश्त पर जमा हो चुकी हैं.

सहाबाकेराम वह लोग थे जिन्होंने महानता के काल से पहले ही कुरआन को पहचान लिया. जिन्होंने उस वक्त खुद को इस्लाम के लिये समर्पित किया जब कि इस्लाम हर तरह के भौतिक स्वार्थ से खाली था. जो उस वक्त पैग़ंबर के हामी बने, जबकि पैग़ंबर के नाम पर किसी तरह का नेतृत्व नहीं मिलता था.जिन्होंने महरूमी की कीमत पर खुदावंद के 'दीन' को अपनाया और खुद बेकद्र हो कर उसकी मुकम्मल कद्रदानी की. उन्होंने बेइस्लामी में इस्लाम की तस्वीर देखी.

असहाब-ए-रसूल को विशिष्ट स्थान उनके विशिष्ट कर्म के आधार पर है. उनका यह विशिष्ट कर्म एक शब्द में यह था कि उन्होंने साथ न देने वाले हालात में साथ दिया.

असहाब-ए-रसूल ने अस्वीकृति की स्थिति में स्वीकृति दी. उन्होंने नाक़द्री की स्थिति में क़द्रदानी की. उन्होंने इल्तिबास (सदृश्ता) का पर्दा फाड़ कर सत्य को पहचाना. उन्होंने महत्वहीन चरित्रों को महानता के कलेवर में देखा. उन्होंने वहां दूरदर्शी होने का प्रमाण दिया, जहां लोग अंधे बने हुए थे. उन्होंने वहां सच्चाई की आवाज सुनी जहां कान वालों को कुछ सुनाई नहीं दे रहा था.

## 'नहीं' में हां को देखना

दूसरे खलीफ़ा उमर फ़ारूक़ रज़िअल्लाहु अन्हु के ज़माने में १४ हिज्री में ईरान पर विजय प्राप्त हुई. उस वक्त ईरान का बादशाह 'युज्दगर्द' और उसका सेनाध्यक्ष रुस्तम था. सा'द बिन अबी वक़्क़ास रज़ि के नेतृत्व में जो मुस्लिम लश्कर ईरान में दाखिल हुआ उसकी कुल संख्या २० हजार से कुछ ज्यादा थी. जबकि रुस्तम की सेना की तायदाद तकरीबन एक लाख थी. इसके बावजूद इस्लामी लश्करों द्वारा लगातार विजय की खबरें सुन कर ईरानी हुक्मरान डरे हुए थे. उन्होंने सा'द बिन अबी वक़्क़ास रज़ि को पैग़ाम भेजा कि बातचीत के लिये अपना दूत भेजें.

इस सिलसिले में सहाबाकराम के कई प्रतिनिधिमंडल मदाइन गये और रुस्तम व युज्दगर्द से बात की. उन लोगों ने बहुत निर्भयता का प्रदर्शन किया. मसलन रिबई बिन आमिर ईरानी दरबार में दाखिल हुए तो वह घोड़े पर बैठे हुए तख्त तक चले गये, उन्होंने अपना खन्जर कालीन में गाड़ कर उससे अपने घोड़े को बांध दिया. उन्होंने ईरानी हुक्मरानों से निहायत बेबाकी के साथ वार्तालाप किया, जिसकी विस्तृत रिपोर्ट इतिहास की किताबों में दर्ज है.

आखिरी गंतव्य में यह घटना हुई कि ईरानी शहन्शाह युज्दगर्द उनकी बात सुनकर बिगड़ गया. उसने गुस्से में मुस्लिम प्रतिनिधिमंडल से कहा कि अगर यह दस्तूर न होता कि 'दूत' क़त्ल न किये जाएं तो मैं तुम लोगों को कत्ल कर देता. तुम्हारे लिये मेरे पास कुछ नहीं. तुम अपने सरदार सा'द बिन अबी वक़्क़ास के पास जाओ और उन्हें बता दो कि मैं रुस्तम को एक बहुत बड़ी सेना के साथ तुम्हारी तरफ भेज रहा हूं, जो तुम लोगों को क़ादसिया के ख़ंदक़ (गढ़ों) में दफ्न कर देगा.

फिर युज्दगर्द ने पूछा कि तुम्हारे प्रतिनिधिमंडल में सबसे महत्वपूर्ण शख्स कौन

है? ताकि मैं उसके सिर पर मिट्टी का टोकरा रखकर उसको यहां से वापस करूं. लोग इस सवाल पर चुप रहे. आखिर प्रतिनिधि मंडल के एक साधारण सदस्य आसिम बिन अम्र खड़े हुए, उन्होंने कहा कि तुम जिसको चाहते हो वह शख्स मैं हूं, तुम मिट्टी मेरे सिर पर रख दो, युज़्दगर्द ने लोगों से पूछा, उन्होंने कहा कि, हां वह हमारे महत्वपूर्ण शख्स हैं.

इसके बाद युज़्दगर्द ने मिट्टी से भरा हुआ एक टोकरा मंगवाया और उसको उनके सिर पर रख दिया और हुक्म दिया कि इन लोगों को यहां से निकाल दिया जाये. आसिम बिन अम्र मिट्टी का टोकरा लिये हुए महल के बाहर आए, उसे उन्होंने अपनी सवारी पर रखा और तेज़ी से रवाना होकर वहां पहुंच गये जहां सा'द बिन अबी वक़्क़ास ठहरे हुए थे. उन्होंने ख़ेमे में दाख़िल हो कर मिट्टी का टोकरा सरदार के सामने रख दिया और पूरा वाक़्या बताया. रावी (इतिहासकार) कहते हैं: सा'द बिन अबी वक़्क़ास ने कहा कि तुम को ख़ुशख़बरी हो. ख़ुदा की क़सम अल्लाह ने हमें उनकी हुकूमत की कुंजियां (चाभी) दे दी और मिट्टी से उन्होंने फ़ाल किया कि उनका मुल्क हमें हासिल होगा. इसके बाद सहाबा हर रोज़ बुलंदी, शरफ़ और रिफ़अत में बढ़ते रहे जबकि ईरानी पस्ती, ज़िल्लत और नकामी के गढ़े में गिरते चले गये.

मुस्लिम प्रतिनिधिमंडल को महल से निकाल देने के बाद युज़्दगर्द ने यह घटना रुस्तम को बताई और मिट्टी का टोकरा सिर पर रखने के मामले को उनकी हिमाक़त (बिवकूफी) क़रार दिया. रुस्तम ने कहा कि नहीं, वह आदमी अहमक़ नहीं था, ख़ुदा की क़सम वह लोग तो हमारे मुल्क की कुंजियां उठा ले गए. (अल-बिदाया वन्निहाया ७/४२-४३)

सोचने के दो तरीके हैं. एक है हालात में घिर कर सोचना दूसरा है, हालात से उपर उठकर सोचना. एक है नफरत और मुहब्बत जैसे जज़्बात के तहत राय कायम करना, दूसरा है नफरत और मुहब्बत जैसे जज़्बात से बुलंद होकर राय कायम करना. आम तौर पर लोग हालात से प्रभावित होकर सोचते हैं. वह तुरंत भावनाओं के प्रभाव में अपनी राय कायम करते हैं मगर सहाबाकराम इन चीजों से उपर थे. वे हालात और भावनात्मक आंदोलनों से उपर उठकर खुद अपने फैसले के तहत यह तय करते थे कि उन्हें क्या करना चाहिये और क्या नहीं?

सहाबा की इस विशेषता ने उन्हें बेपनाह हद तक ताकतवर बना दिया था. उन्हें मिट्टी दी जाती थी और वह उसे विजयश्री के मुकुट की तरह स्वीकार लेते

थे. जिस घटना को लोग बेइज्जती के अर्थ में समझ लेते हैं उससे वह इज्जत का अर्थ निकाल लेते थे. जो अनुभव लोगों को झुंझलाहट में मुब्तला कर देता है उससे वह अपने लिये विश्वास का आधार प्राप्त कर लेते थे.

सहाबा मानव इतिहास के वह अनोखे लोग थे जो, दुश्वारियों में आसानी का राज़ पा लेते थे. जो नाकामी से कामयाबी को निचोड़ते थे, जो पराजय की घटना को विजय की घटना में बदल देते थे. जो निराशा के अंधेरे में उम्मीद की किरणें देख लेते थे. वह समझते थे कि उसने खुद ही अपना मुल्क हमारे हवाले कर दिया है.

## उच्चदर्शिता

१७, हिज्री के आखिर में सीरीया और उसके आस-पास के इलाकों में ताउन (प्लेग) की महामारी फैली. १८, हिज्री में यह बला बहुत तेज़ हो गई. उस वक्त सीरिया की मुस्लिम सेना के नायक अबू ओबैदा बिन अल-जर्राह रजि० थे. उनकी नीति यह थी कि मुसलमान जहां हैं, वहीं ठहरे रहें. हज़रत अबु ओबैदा उस रोग में मुब्तला हुए और उसी में उनका निधन हो गया.

उनके बाद मआज़ बिन जबल रजि० उनकी जगह सेना नायक हुए. उनकी नीति भी अबु ओबैदा की नीति की तरह थी. हज़रत मआज़ बिना जबल भी उसी रोग में मौत को पहुंचे.

उनके बाद अम्र बिन अल-आस रजि० उनकी जगह फौज के नये सरदार नियुक्त हुए, उन्होंने अपनी नीति बदली. उन्होंने अपनी मौजूदा जगह छोड़ने का फैसला किया. इतिहासकार इब्न-ए-कसीर लिखते हैं: 'फिर जब मआज़ बिन ज़बल की मौत हो गई तो अम्र बिन अल-आस लोगों पर सरदार मुक़र्रर हुए, उन्होंने खड़े होकर लोगों के बीच भाषण दिया. उन्होंने कहा कि ऐ लोगों यह बीमारी जब आती है तो वह आग की तरह भड़क उठती है. बस तुम लोग पहाड़ों में अपने आपको इस से सुरक्षित कर लो. यह सुनकर अबू वायल होज़ली ने कहा कि खुदा की कसम तुमने झूठ कहा. मैंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की सोहबत पाई है, और तुम मेरे इस गधे से भी ज्यादा बुरे हो. अम्र बिन अल-आस ने कहा कि खुदा की कसम तुम जो कह रहे हो उसका मैं जवाब नहीं दूंगा.' (अल-बिदाया वन्निहाया ७/७९)

यह एक मिसाल है, जो बताती है कि सहाबा केराम के बीच कितनी सख़्त

आलोचना का रिवाज था. उनके यहां मताभिव्यक्ति पर कोई पाबंदी न थी. लोग न सिर्फ़ आपस में एक दूसरे की आलोचना करते थे बल्कि हाकिमों और सरदारों पर भी स्वतंत्र रूप से आलोचनात्मक टिप्पणी की जा सकती थी और न हाकिम उसको बुरा मानता था, न आम लोग.

इससे अंदाजा होता है कि असहाब-ए-रसूल कितने ज़्यादा बड़े दिल वाले लोग थे. यही कारण है कि उन्हें इतनी ज्यादा बड़ी कामयाबी हासिल हुई. क्योंकि इस दुनिया का उसूल यह है कि - जितना बड़ा दिल, उतनी ही बड़ी कामयाबी.

इस दुनिया में सरचनात्मक प्रवृति के तहत ऐसा है कि लोगों की सोच अलग-अलग होती है. जो व्यक्ति जितना ज्यादा क्षमता वाला और प्रतिभावान हो, उतना ही ज्यादा वह पृथक अंदाज से सोचता है. ऐसे हालत में कोई ताकतवर टीम बनाने के लिये जरूरी है कि उसके लोगों में आलोचना को सहने की शक्ति हो. खास तौर पर नेता ऐसा होना चाहिये कि वह सख्त आलोचना को भी ठंडे दिमाग़ के साथ सुने. वह मतभेद और सहमति से उपर उठकर लोगों के साथ मामला करे.

जो लोग अपने अन्दर यह विशेषता रखते हों, वही अपने गिर्द अच्छे इंसानों की टीम जमा कर सकते हैं और उनको साथ लेकर कोई बड़ा काम अंजाम दे सकते हैं. जिन लोगों के अंदर यह विशेषता न हो उनके गिर्द सिर्फ सतही और खुदग़र्ज या मुनाफ़िक़ किस्म के लोग जमा होंगे और सतही, खुदगर्ज़ और मुनाफ़िक़ तरह के लोगों की जमाअत दुनिया में कोई बड़ा काम अंजाम नहीं दे सकती.

असहाब-ए-रसूल ऐसे बुलंदनज़र (उच्चदर्शी) और स्वच्छ प्रवृति के इंसान थे, जिन्हें न तारीफ खुश करती थी, न आलोचना सुन कर वे बिगड़ते थे. खुदा को उन्होंने ऐसी अजीम तरीन सच्चाई के तौर पर पाया था कि उसके बाद उनके लिये हर दूसरी चीज छोटी हो गई थी. वह खुदा की बड़ाई में जीने वाले लोग थे, इसलिये आलोचना और मतभेद जैसी चीजें उनके मानसिक संतुलन को बिगाड़ती नहीं थीं.

असहाब-ए-रसूल का एक-एक शख्स हीरो था. मगर उनकी यही विशेषता थी जिसके आधार पर वह सब मिल कर एक मजबूत और स्थायी दीवार बन गये. उनके सामने हर तरह की प्रतिकूल बातें पेश आईं, मगर वह उनकी एकता को तोड़ न सकीं. वह उनकी स्थिरता में रोड़े अटकाने वाली प्रमाणित नहीं हुईं. इस प्रकार की समस्त ख़राबियां मतभेद के कारण पैदा होती हैं, और मतभेद को पहले ही वह अपने लिये एक अस्वीकार्य चीज़ बना चुके थे.

# बेलाग इंसाफ़

इस्लाम के चौथे खलीफा-ए-राशिद हज़रत अली बिन अबी तालिब रज़ि अल्लाहु अन्हु की एक घटना हदीस और इतिहास की किताबों में वर्णित है. वह घटना संक्षेप में इस प्रकार है:

'अली बिन अबी तालिब रजि० जब ख़लीफ़ा थे, एक रोज़ वह बाज़ार की तरफ़ निकले. उन्होंने देखा कि एक ईसाई वहां एक कवच बेच रहा है. हज़रत अली ने पहचान लिया कि यह उनकी वही कवच है, जो इससे पहले खो गई थी. उन्होंने ईसाई से कहा कि यह ज़िरह मेरी है. ईसाई ने इन्कार किया. हज़रत अली ने कहा कि फिर मुसलमानों के क़ाजी के पास चलो. वह तुम्हारे और मेरे बीच फ़ैसला करेगा

उस वक्त कूफा में मुसलमानों का काज़ी शुरैह बिन अल हारिस थे. वह ७७ हिज़्री तक उस पद पर बने रहे. चुनांचे दोनों वहां गये. जब काज़ी शुरैह ने अमीरुल मोमिनीन को देखा तो वह अपने मुक़ाम से उठ गये और हज़रत अली को अपने मुक़ाम पर बिठाया. और काज़ी शुरैह खुद उनके सामने ईसाई के पहलू में बैठ गये.

हज़रत अली ने कहा कि - ऐ शुरैह मेरे और इसके बीच फ़ैसला करो. शुरैह ने कहा कि ऐ अमीरूल मोमिनीन आप क्या कहते हैं. हजरत अली ने कहा कि यह मेरा कवच है, कुछ दिन पहले वह मुझ से खो गई थी. फिर काज़ी शुरैह ने ईसाई से पूछा कि तुम क्या कहते हो. ईसाई ने कहा कि मुसलमानों के सरदार झूठ कह रहे हैं. यह कवच मेरा है.

काज़ी शुरैह ने हज़रत अली से चश्मदीद गवाह हाजिर करने को कहा. क्योंकि दलील और गवाही के बिना आप कवच को उसके हाथ से नहीं ले सकते. हज़रत अली ने कहा कि शुरैह ने सच कहा. उसके बाद उन्होंने अपनी तरफ से दो गवाह. पेश किये. एक अपने सुपुत्र हसन को और दूसरे अपने गुलाम क़ंबर को. काज़ी शुरैह ने कहा कि हसन के अलावा कोई और गवाह लाइये. हज़रत अली ने कहा कि क्या तुम हसन की गवाही को रद्द करते हो? क्या तुमको यह हदीस मालूम नहीं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया है कि हसन और हुसैन जन्नत के नौजवानों के सरदार हैं.

काज़ी ने कहा कि क़ंबर की गवाही मैं स्वीकार करता हूं मगर हसन की गवाही मैं कुबूल (स्वीकार) नहीं कर सकता क्योंकि आप से मैंने यह सुना है कि बेटे की गवाही बाप के हक में विश्वस्त नहीं. उसके बाद हज़रत अली ने काज़ी शुरैह के फैसले को स्वीकार कर लिया.

इस घटना का ईसाई पर बहुत प्रभाव पड़ा. उसने कहा कि खुदा की क़सम ऐ अमीरुल मोमिनीन यह कवच आपका ही है. आपके ऊंट से गिर गया थी, फिर मैंने इसे उठा लिया, फिर ईसाई ने कहा कि इस्लाम की यह बात बहुत अजीब है कि अमीरुल मोमिनीन खुद मेरे साथ काज़ी के पास आए और काज़ी उसके ख़िलाफ़ फैसला करे और वह उस फ़ैसले पर राज़ी हो जाये.

इसके बाद ईसाई ने इस्लाम का कलिमा पढ़ कर कहा कि मैं गवाही देता हूं कि अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं, और मुहम्मद अल्लाह के रसूल हैं, हज़रत अली ने कहा कि जब तुमने इस्लाम कुबूल कर लिया तो अब यह कवच तुम्हारा है. इसके अलावा उसे सात सौ दिरहम और एक घोड़ा दिया. तबसे वह ईसाई हज़रत अली का साथी बन गया. यहां तक कि जंग-ए-सिफ़्फ़ीन में लड़ता हुआ शहीद हो गया. ('हयातुस्सहाबा' १/२३४-३५)

प्राचीन काल में हुक्मरान को हमेशा कानून से उपर समझा जाता था. यह कल्पना से भी बाहर था कि एक शासक को अदालत में मामूली इंसान की तरह खड़ा किया जा सके. मौजूदा जम्हूरी जमाने में हालांकि खालिस कानूनी ऐतिबार से हुक्मरान और अवाम को बराबर समझा जाता है. यद्यपि आज भी यह व्यवहारिक रूप से नामुमकिन है कि एक सत्तासीन व्यक्ति को अदालत में बुलाया जाये और जज की कुर्सी पर बैठने वाला आदमी उसके उपर कानून को आम इंसानों की तरह लागू करे

पूरे ज्ञात इतिहास में सिर्फ ये असहाब-ए-रसूल हैं, जिन्होंने यह अपवाद उदाहरण कायम किया कि उनके एक हाकिम को अदालत में लाया जाये और एक आम इंसान की तरह मुकद्दमा चलाकर उसके मामले का फ़ैसला किया जाये.

इंसानी ज़मीर (आत्मा) यह चाहता है कि हर आदमी समान तौर पर कानून के सामने उत्तरदायी हो. मगर इंसानी ज़मीर की यह इच्छा वास्तव में सिर्फ एक ही दौर में व्यवहारिक घटना बन सकी और वह दौर बेबाक असहाब-ए-रसूल का दौर है.

बादशाह पर यकसां इंसाफ की बात असहाब-ए-रसूल से पहले सिर्फ अफसानों की किताबों में थीं. असहाब-ए-रसूल ने उसे दास्तानों से और अफसानों से निकाल कर वास्तविक ज़िंदगी की घटना बना दिया.

# राजनीतिक निःस्वार्थता

१२, रबी उल-अव्वल ११, हिज्री को मदीने में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का निधन हुआ. उसके बाद यह सवाल पैदा हुआ कि आपके बाद मुसलमानों का अमीर कौन हो. उस वक्त मदीने में मुसलमानों के दो बड़े गिरोह थे. मुहाजिरीन और अंसार. अंसार का ख्याल था कि इमारत उनका हक है क्योंकि रसूल और मुहाजिर सहाबा को जब मक्का छोड़ना पड़ा तो अंसार ने उस पूरे काफ़ले को अपने शहर मदीने में जगह दी. वह हर ऐतिबार से उनके मददगार बन गये. उनकी हैसियत उस वक्त हालांकि एक लुटे हुए काफ़ले की थी, मगर अंसार ने उनकी इज्जत और एहतिराम में कोई कमी नहीं की. अंसार की निरंतर हिमायत और उनके बलिदान के ज़रिये इस्लाम मज़बूत हुआ और उसका शानदार इतिहास बना. इन कारणों के आधार पर अंसार का विचार था कि इमारत (हुकूमत) उनका हक़ है. अंसार के लोग इस मामले को तय करनें के लिये अपने कबीले की चौपाल (सक़ीफ़ा बनी सायदा) में जमा हुए.

यहां तक मामला पहुंच चुका था कि अबू बकर सिद्दीक़ रज़िअललाहो अन्हु और दूसरे मुहाजिरीन को ख़बर हुई. वह तुरंत 'सक़ीफ़ा बनी सायदा' पहुंचे. क्योंकि इस मामले में मामूली ग़फ़लत भी निहायत दूररस नतीजा पैदा करने का कारण बन सकती थी. अंसार का यह खयाल ठीक था कि उनको विशेष फ़ज़ीलतें (सत्कर्मेच्छा) हासिल है. मगर दीनी फ़ज़ीलत एक अलग चीज है और सियासी नेतृत्व उससे भिन्न दूसरी चीज. दीनी फ़ज़ीलत किसी भी व्यक्ति के अंदर हो सकती है, मगर राजनीतिक नेतृत्व सिर्फ़ वह लोग कर सकते हैं जिनके हक़ में ऐतिहासिक कारण जमा हो चुके हों.

हज़रत अबू बकर सकीफा बनी सायदा पहुंचे तो वहां अंसारियों के बुजुर्ग नेता सा'द बिन उबादा भी मौजूद थे. हाज़रीन का रुझान था कि सा'द बिन ओबादा को मुसलमानों का सरदार बनाया जाये. हज़रत अबुबकर ने सा'द बिन ओबादा से कहा कि क्या तुमको याद नहीं कि तुम्हारी मौजूदगी में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फरमाया था कि 'अरब में सियासी सरदारी सिर्फ कुरैश ही कर सकते हैं. अरब के लोग उसके सिवा किसी और की मातहती कुबूल करने पर राज़ी नहीं हो सकते. हज़रत अबू बकर ने अंसार से कहा कि तुम्हारी 'दीनी' (मज़हबी) सेवा और इस्लाम के अन्दर तुम्हारा मुक़ाम मुसल्लम है. लेकिन अरब के लोग कुरैश की कयादत (नेतृत्व) के सिवा किसी और के नेतृत्व से परिचित नहीं है. अबू बकर सिद्दीक़ रज़िअल्लाहु

अन्हु की तक़रीर के बाद तमाम अंसार इस पर राज़ी हो गये कि मुहाजिरीन (कुरैश) में से किसी शख्स को अमीर बनाया जाये. यह बेहद इन्कलाबी फैसला था, जिसकी मानवीय इतिहास में कोई मिसाल नहीं मिलती.

अंसार पहले इस मामले को सिर्फ 'मदीना' की स्थिति के ऐतिबार से देख रहे थे, अब उन्होंने इस मामले को पूरे देश के परिप्रेक्ष्य में देखना शुरू किया. उनके बेलाग जेहन और यथार्थवादी मिज़ाज ने उन्हें बताया कि मदीने में यद्यपि स्थानीय तौर पर अंसार को बड़प्पन हासिल है, मगर व्यापक स्तर पर पूरा अरब किसी कुरैश सरदार की सरदारी ही कुबूल कर सकता है. अंसार ने इस मामले को अपने लिये प्रतिष्ठा का या राजनीतिक पक्षपात का मुद्दा नहीं बनाया. चुनांचे उन्होंने तुरंत हज़रत अबू बकर के प्रस्ताव को मान लिया.

अरब में इस्लाम को जो वर्चस्व प्राप्त हुआ उसमें निस्संदेह अंसार का बहुत बड़ा हिस्सा था. इसमें उनकी विशाल कुर्बानियां शामिल थीं. ऐसी हालत में यह स्वाभाविक था कि वर्चस्व प्राप्त होने के बाद अंसार यह चाहें कि अमीरुल मोमिनीन का पद उनके पास हो या कम से कम काबिल-ए-लिहाज़ हद तक उन्हें सत्ता में शामिल किया जाये, चुनांचे एक अंसारी ने देखा कि अमीर का पद अंसार को देने पर मतभेद है तो उसने कहा कि एक अमीर तुम में से हो और एक अमीर हममें से. मगर व्यापक तौर पर राजनीति समझने के बाद तमाम अंसार मुहाजिरीन (कुरैश) की सत्ता पर राज़ी हो गये. वे इस पर राज़ी हो गये कि राजनीतिक नेतृत्व का पद एकतरफ़ा तौर पर मुहाजिरीन को दे दिया जाये, और अंसार का उसमें कोई हिस्सा न हो.

किसी व्यवस्था को चलाने के लिये इस कुर्बानी की बहुत अहमियत है. मगर यह कुर्बानी सिर्फ़ वही लोग दे सकते हैं जो अपने अंदर राजनीतिक निःस्वार्थता की विशेषता रखते हों. अंसार ने इस महान विशेषता का प्रमाण दिया. अगर उनके अंदर सियासी बेगर्ज़ी की यह असाधारण विशेषता न होती तो पैगंबर-ए-इस्लाम के निधन के बाद अंसार और मुहाजिरीन में टकराव शुरू हो जाता. इस्लाम का इतिहास निर्माण से पहले ही मदीने में दफ़न हो जाता. मगर अंसार में अपने राजनीतिक अधिकार से पीछे हट कर इस्लामी इतिहास को आगे बढ़ाया.

आंदोलन अपने प्रारंभ में हो या प्रस्थान बिंदु पर हो तो उसमें पद का आकर्षण नहीं होता. मगर जब वह कामयाबी के मरहले में पहुंचते हैं, तो उसमें पद और सत्ता का आकर्षण शामिल हो जाता है. चुनांचे हर आंदोलन में कामयाबी के बादपदों के लिये संघर्ष शुरू हो जाता है. असहाब-ए-रसूल इतिहास के पहले गिरोह हैं, जो अज़ीम कामयाबी के मरहले (गंतव्य) तक पहुंचे मगर उन्होंने पदों को दूसरों के हवाले करके

अपने लिये पदहीन हैसियत स्वीकार लिया.

## हुकुमत के बावजूद

'कुरआन में इरशाद हुआ है कि यह आख़िरत का घर हम उन लोगों को देंगे जो ज़मीन में न बड़ा बनना चाहते हैं और न फ़साद करना. और आख़िरी अंजाम डरने वालों के लिये हैं'. (अलक़सस ८३)

इस तरह की आयतें और हुक्म कुरआन में बहुत हैं. यहां गौर करने की बात यह है कि जमीन में बड़ा कौन बनता है, जो ज़मीन में फ़साद करता है. यद्यपि एक आम इंसान भी अपने दायरे में बड़प्पन और फसाद का प्रदर्शन करता है, मगर यह काम ज्यादा बड़े पैमाने पर वह लोग करते हैं, जिन्हें ज़मीन पर सत्ता मिली हुई हो. जिनको वह इख्तियार हासिल हो, जिसके बल पर कोई व्यक्ति जमीन को फसाद से भर देता है.

इस संदर्भ में सहाबाकेराम का समूह इतिहास का एकमात्र गिरोह है, जो इस वांछित मानवीय मूल्यों का प्रमुख नमूना है. यह वह लोग हैं, जिनको सत्ता मिली, मगर सत्ता ने उनके अंदर घमंड पैदा नहीं किया. उनको जमीन में बड़ाई मिली, मगर उन्होंने एक आम आदमी की तरह जिंदगी गुज़ारी. वह मुख्य अधिकारों के मालिक थे, मगर अधिकार प्राप्त होने के बावजूद वह फसाद करने वाले और ज़ालिम नहीं बने. यहां दूसरे खलीफा हज़रत उमर-फ़ारूक़ की एक घटना नक़्ल की जाती है, जो इस मामले में एक प्रतीकात्मक उदाहरण की हैसियत रखती है.

'फ़ज़ल बिन उमैरा कहते है कि अहनफ बिन कैस एक ईराकी प्रतिनिधिमंडल के साथ उमर बिन खत्ताब के पास मदीना आए, वह गर्मी के मौसम में मदीना आए थे, जबकि गर्मी बहुत सख्त थी. उमर अपनी कमर पर एक चोग़ा बांधे हुए थे. और एक ऊंट की मालिश कर रहे थे, जो कि सरकारी कोष (बैतुलमाल) का उंट था. उन्होंने कहा कि ऐ अहनफ़ अपने कपड़े उतार दो और इस उंट के मामले में अमीरुल मोमिनीन की मदद करो, क्योंकि यह बैतुलमाल का उंट है. इसमें यतीम, मिस्कीन और विधवाओं का हिस्सा है. लोगों में से एक शख्स ने कहा कि अल्लाह आपको माफ़ करे ऐ अमीरुल मोमिनीन, क्यों नहीं आपने बैतुलमाल के गुलामों में से किसी गुलाम को हुक्म दे दिया, वह आप की तरफ़ से इस काम को अंजाम दे देता? उमर ने जवाब दिया - मुझ से ज़्यादा (बड़ा) गुलाम कौन है.

सत्ता पाने के बाद आदमी बिगड़ जाता है. यह बात इतनी आम है कि लॉर्ड ऐक्टिन 1834-1902 की यह सूक्ति मुहावरा बन गई है कि सत्ता बिगाड़ती है और संपूर्ण सत्ता बिलकुल ही बिगाड़ देती है:

Power corrupts and absolute power corrupts absolutely.

मगर इतिहास में गिरोह के ऐतिबार से सहाबा केराम की मिसाल एक अपवाद मिसाल है कि उनको ज़मीन पर सत्ता मिली, लेकिन सत्ता उनको बिगाड़ने वाली न बन सकी. उन्हें लोगों के उपर हुकूमत हासिल थी, मगर वह महकूमों (अधीनस्तों) में से एक महकूम बन कर लोगों के बीच रहे. सहाबा के दौर में खलीफा और अमीरों और हाकिमों के यहां इसकी बहुत सी मिसालें पाई जाती हैं.

सहाबा केराम इतिहास की एक मात्र मिसाल बन गये, जिनके हवाले से हुक्मरानों को साधारण और सादा जिंदगी गुज़ारने का आह्वान किया जाये. १९३७ में पहली बार हिन्दुस्तान में कांग्रेस का मंत्रिमंडल बना तो महात्मा गांधी ने अपने अंग्रेजी अख़बार में कांग्रेसी मंत्रियों को साधारण जीवन जीने का मश्विरा देते हुए लिखा कि मैं आप लोगों के सामने रामचंद्र और कृष्ण का हवाला (उदाहरण) नहीं दे सकता, क्यों कि वह ऐतिहासिक व्यक्तित्व नहीं हैं. मैं मजबूर हूं कि सादगी के नमूने के लिये अबू बकर और उमर फ़ारूक़ का नाम पेश करूँ. वह हालांकि बहुत बड़ी सल्तनत के मालिक थे, मगर उन्होंने मुफ़्लिसों (गरीबों) की तरह ज़िंदगी गुजारी. (हरीजन, २७, जुलाई १९३७)

हुकूमत और सत्ता के बावजूद साधारण ज़िंदगी गुज़ारना कोई आसान बात नहीं. यह तमाम मुश्किल कामों में सब से ज्यादा मुश्किल काम है. इस स्तर पर वह लोग पूरे उतरते हैं जिन लोगों के लिये पद सम्मान और प्रतिष्ठा की चीज़ न हो बल्कि जिम्मेदारी की चीज हो. जो ज़िंदगी के संसाधनों को आराम और राहत का सामान नहीं बल्कि आज़माइश और इम्तिहान समझते हों. जो अपने इच्छा पर चलने के बजाये अपने ईमान की चेतना पर चलने की कोशिश करते हों. सहाबाकेराम वह रब्बानी लोग थे जिन्होंने इस मुश्किल तरीके को उसकी तमाम मुश्किलों के बावजूद अपनी जिन्दगी में इख्तियार किया.

## समझौते की पाबंदी

कुरआन में यह हुकम दिया गया है कि जब दूसरी क़ौम से तुम्हारा कोई समझौता हो, तो तुम उस समझौते पर क़ायम रहो. ऐसा न करो कि उपर-उपर

मुहायदे की स्थिति बाकी रखी और अंदर से खुफिया तौर पर उसे तोड़ दो. इस बारे में इरशाद हुआ है कि अगर तुमको किसी कौम से वायदा टूटने का डर हो तो उनका वायदा उनकी तरफ़ फेंक दो, उसी तरह कि तुम और वह दोनों बराबर हो जाएं, बेशक अल्लाह बदअहदों (वायदा तोड़ने वालों) को पसंद नहीं करता (अल-अन्फ़ाल, ५८).

यानी तुमको दुश्मन के खिलाफ जो कार्रवाई करनी है, मुहायदे को घोषित रूप से तोड़ने के बाद करो न कि समझौता बाकी रखते हुए, इस आयत के नीचे तफसीर बताने वालों ने सहाबा के काल की एक घटना लिखी है. यह घटना कुछ शब्दिक अन्तर के साथ अहमद, अलतिरमिज़ी और अबु दाउद ने भी इतिहास में दर्ज किया है. तीनों इतिहासों को सामने रखते हुए यहां हम उसका अनुवाद लिख रहे हैं:

सोलैम बिन आमिर कहते हैं कि अमीर मुआविया और रूमी हुकूमत के बीच एक मियादी (समयबद्ध) समझौता हुआ था. मुआविया अपनी सेना लेकर रूमी इलाके की तरफ रवाना हुए, उनका इरादा था कि सरहद के करीब जाकर ठहरें और अचानक उनके उपर हमला कर दें मुआविया जब सरहद पर पहुंचे तो एक व्यकित घोड़े पर सवार होकर सामने आया और उंची आवाज में कहने लगा कि अल्लाहो अकबर, अल्लाहो अकबर, इस्लाम में अहद (समझौते के वायदे) को पूरा करना है, अह्द को तोड़ना नहीं है.

लोगों ने देखा तो वह रसूलुल्लाह सल्लल्लाह अलैहि वसल्लम के सहाबी अम्र बिन अन्बसा थे. इसके बाद अमीर मुआविया ने उनको अपने खेमे में बुलाया. और पूछा कि आपका मतलब क्या है? उन्होंने कहा कि मैंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाह अलैहि वसल्लम को यह कहते हुए सुना है कि जिसका किसी कौम से मुहायदा हो तो वह न उसकी कोई गिरह बांधे और न उसकी कोई गिरह खोले, यहां तक कि उसकी अवधि पूरी हो जाये. या फिर वह अह्द को बराबरी के साथ उसकी तरफ फेंक दे

(तफ़सीर इब्ने कसीर २/३२०, अल जामेउलएहकाम-उल-कुरआन ८/३२).

उस वक्त अमीर मुआविया सरहद-ए-रोम पर पड़ाव डाले हुए थे और अगली सुबह को हमला करने वाले थे. मगर इस चेतावनी के बाद वह हमले से रुक गये. और अपनी फौजों को वापसी का हुक्म दे दिया है'

(मिशकात-उल-मसाबीह, अल-जुज़ अल सानी-पृ०-११६५)

अंतरराष्ट्रीय दुनिया में हमेशा यह रिवाज चला आ रहा था कि जिस क़ौम

से दुश्मनी हो जाती थी, उसके बारे में लोग किसी नैतिक सिद्धांत के अनुकरण को आवश्यक नहीं मानते थे. यहां तक कि ऐसी क़ौम से बज़ाहिर अमन और सुलह का मुहायदा करने के बावजूद अंदर-अंदर उसके खिलाफ़ कार्रवाई जारी रखते थे.

इस्लाम के ज़रिये अल्लाह तआला को जो नमूना क़ायम करना था उसमें यह भी शामिल था कि अंतरराष्ट्रीय संबंध में नैतिक सिद्धांतों को पूरी तरह निभाया जाये. मसलन किसी क़ौम से मुहायदा हो तो उस मुहायदे की आख़िरी हद तक पाबंदी की जाये. और अगर उस क़ौम की तरह से (अमानत में) ख़यानत का अंदेशा हो तब भी कोई कार्रवाई सिर्फ़ उस वक्त की जाये जबकि उस क़ौम को इसकी ख़बर कर दी जाये. ताकि मुहायदे के दूसरे पक्ष को बखूबी मालूम हो जाये कि अब दोनों के बीच पहले जैसे रिश्ते बाक़ी नहीं हैं.

यह निसंदेह एक बेहद महत्वपूर्ण सिद्धांत था. उसे व्यवहारिक रूप से कायम रखना कोई आसान काम न था. क्योंकि यहां खुद अपने स्वार्थ के खिलाफ था. ज़ाहिर है कि अगर दुश्मन को पेशगी तौर पर बताया जाये कि तुम्हारे साथ अमन के हालात खत्म हो चुके हैं और अब हम तुम्हारे उपर हमला करने वाले हैं तो ऐसी स्थिति में दुश्मन चौकन्ना हो जायेगा. वह तैयारी करके सख्त मुकाबला करेगा. यहां तक कि संभव है हमारे क़दम ही हमारे लिये प्रतिकूल सिद्ध हों.

इस स्थिति में इस अंतरराष्ट्रीय सिद्धांत को व्यवहारिक रूप में क़ायम करने के लिये एक बहुत बाउसूल क़ौम दरकार थी. जो हर दूसरे पहलू को नजरअंदाज करके सिद्धांत और उसूल को प्रमुख हैसियत देने का हौसला रखती हो. जो हर नुकसान गवारा कर ले मगर उसूल की खिलाफवर्ज़ी गवारा न करे.

चर्चित घटना एक मिसाल है, जिससे पता चलता है कि असहाब-ए-रसूल ने इस हौसले का प्रमाण दिया. वे इसके लिये वांछित कुर्बानी देने पर राज़ी जो गये. इसी का यह नतीजा था कि इतिहास में पहली बार अंतरराष्ट्रीय संबंधों में यह उसूल व्यवहारिक तौर पर कायम हुआ कि दो राष्ट्रों में बिगाड़ और दुश्मनी हो तो भी नैतिक परंपराओं को न तोड़ा जाये. दुश्मन से मुकाबले में भी सच्चाई और शराफत के ख़िलाफ़ कर्म न किया जाये.

हर उसूल की एक क़ीमत है. लोग क़ीमत देना नहीं चाहते, इसलिये वह इसपर अमल भी नहीं करते. सहाबा ने हर उसूल की वांछित कीमत अदा की, इसीलिये वे हर उसूल पर कर्म करने में कामयाब रहे.

# इतिहास निर्माता

द्वितीय खलीफ़ा उमर बिन खत्ताब रज़िअल्लाहु अन्हु की एक घटना इस्लामी इतिहास की विभिन्न किताबों में चर्चित है. इमाम जमालुद्दीन अबुल फरज़ बिन अलजौज़ी (म ५९७ हिज्री) ने अपनी किताब 'तारीख-ए-उमर बिन खत्ताब' में इस घटना को निस्वतम ज्यादा विसतार के साथ दर्ज किया है. नीचे उसका अनुवाद लिखा जा रहा है.

अनस बिन मालिक कहते हैं कि हम उमर बिन अल-खत्ताब के पास थे कि उनके यहां मिस्र निवासियों में से एक व्यक्ति आया. उसने कहा कि ऐ अमीरुल मोमिनीन, मैं आपका शरण चाहता हूं. उन्होंने पूछा कि तुम्हारा क्या मामला है? मिस्री ने कहा कि मिस्र के हाकिम अम्र बिन अल-आस ने मिस्र में घोड़ों की दौड़ कराई. उसमें मेरे घोड़े ने जीत हासिल की. फिर तब लोग आ-आ कर मेरे घोड़े को देखने लगे तो अम्र बिन अल-आस के लड़के मुहम्मद उठे और उन्होंने कहा कि का'बा के रब की कसम मेरा घोड़ा जीता. जब वह मेरे क़रीब आए और मैंने उनको पहचाना तो मैंने कहा कि का'बा के रब की कसम मेरा घोड़ा. इस पर मुहम्मद बिन अम्र यह कहते हुए मुझे कोड़े से मारने लगे कि यह लो, और मैं शरीफ़ों की औलाद हूं.'

रावी कहते हैं कि खुदा की क़सम, उमर ने इसके सिवा और कुछ न किया कि उन्होंने मिस्री से कहा कि बैठो. फिर उन्होंने अम्र बिन अल-आस के नाम खत लिखा कि जब तुमको मेरा यह खत पहुंचे तो तुम तुरंत मदीना आ जाओ और अपने साथ अपने लड़के मुहम्मद को भी लाओ. रावी कहते हैं कि जब खत पहुंचा तो अम्र बिन अल-आस ने अपने बेटे को बुलाया और पूछा कि क्या तुमसे कोई गलती हुई है, या तुमने कोई जुर्म किया है. मुहम्मद ने कहा कि नहीं. उन्होंने फिर पूछा कि आख़िर क्या वजह है, कि उमर तुम्हारे बारे में ऐसा लिख रहे हैं. रावी कहते हैं कि फिर दोनों चल कर उमर के पास आए,

अनस बिन मालिक कहते हैं कि खुदा की क़सम, उस वक्त हम लोग उमर के पास 'मिना' में थे कि इतने में अम्र बिन अल-आस आ गये. उनके शरीर पर एक 'लुंगी' और एक चादर थी. फिर उमर उनकी तरफ़ संबोधित हुए, ताकि उनके लड़के को देखें, तो वह अपने बाप के पीछे खड़े थे. उमर ने मिस्री को कहा - 'यह कोड़ा लो, शरीफ़ज़ादे को मारो, रावी कहते हैं कि मिस्री ने उनको मारा, यहां तक कि उनको लहू-लहान कर दिया.

फिर उमर ने कहा कि अम्र बिन अल-आस के सिर पर भी मारो, क्यों कि

खुदा की क़सम इनके लड़के ने इन्हीं की बड़ाई के बल पर तुमको मारा था. मिस्री ने कहा कि ऐ अमीरुल मोमिनीन, जिसने मुझको मारा था, उसे मैंने मार लिया. उमर ने कहा कि खुदा की क़सम अगर तुम इनको मारते तो हम तुम्हारे इनके बीच कभी न आते. यहां तक कि तुम खुद ही इनको छोड़ दो. फिर उन्होंने अम्र बिन अल-आस से कहा कि ऐ अम्र तुमने कब से लोगों को गुलाम बना लिया. हालांकि इनकी माओं ने इनको आज़ाद पैदा किया था.

इसके बाद उमर मिस्री की तरफ़ संबोधित हुए और कहा कि इत्मीनान के साथ वापस जाओ अगर तुम्हारे खिलाफ़ फिर कोई बात पेश आए तो मुझे लिखो. (अबुल-फ़रज़ बिन अल-जौज़ी, तारीख़-ए-उमर-बिन खत्ताब, प्रकाशक: मतब-अ-तुल तौफीकुल अरबीया, अल-काहिरा पृ० ९९-१००)

यह घटना अपने तथ्य के परिप्रेक्ष्य में संपूर्ण मानव इतिहास की एक अनोखी घटना है. यह बताती है कि सहाबाकेराम कौन लोग थे. यह वह लोग थे जिन्होंने खुदा के दीन का इतिहास बनाया, सहाबा से पहले खुदा के दीन की हैसियत एक चिंतनीय आंदोलन की थी, सहाबा के बाद खुदा के दीन की हैसियत वास्तविक और व्यवहारिक इतिहास हो गई.

अल्लाह तआला को यह वांछित था कि उसके 'दीन' की पीठ पर एक ऐतिहासिक नमूना स्थापित हो जाये. मगर यह कोई साधारण बात न थी. इसके लिये ज़रूरत थी कि 'दीनी' विचारों के आधार पर एक विश्वव्यापी इन्क़लाब लाया जाए, इस तरह के एक दूरदर्शी परिवर्तन के बिना ऊपर चर्चित प्रकार की घटनाएं इतिहास के पन्नों पर नहीं लिखी जा सकती थी.

चर्चित घटना निस्संदेह खुदाई इंसाफ और मानवीय समता की महान मिसाल है. मगर इस उदाहरण को अभिव्यक्त करने के लिये बेपनाह कुर्बानियों की जरूरत थी. इसके लिये जरूरी था कि पहले वह संपूर्ण इन्क़लाब लाया जाये जो रसूल सलल्लम की रहनुमाई में सहाबाकेराम लाये. फिर इसके लिये जरूरत थी कि समाज में सहाबा जैसे उदाहरण पुरूषों का वर्चस्व स्थापित हो. फिर इसके लिये जरूरी था कि जो खलीफा एक हाकिम के बेटे के जुर्म पर उसे कोड़ा मारने का हुक्म दे रहा है, वह खुद अपने बेटे के जुर्म पर इसी तरह उसे कोड़ा मार चुका हो.

असहाब-ए-रसूल ने यह सारी महंगी कीमत अदा की. वह अपने हित के लिये जीने के बजाये खुदा के दीन (मज़हब) के लिये जिये. उसके बाद ही यह संभव हुआ कि उनके जरिये से खुदा के दीन की वांछित व्यवहारिक इतिहास बन सके.

# अच्छे शासक

अफ्लातून (४२८-३४८ ईसा पूर्व) प्राचीन यूनान के तीन बड़े दार्शनिकों में से एक माना जाता है. दूसरे दो दार्शनिक सुक़रात और अरस्तु (Aristotal) हैं.उसकी एक मशहूर किताब है, जिसका नाम है 'रिपब्लिक'. यह आदर्श रियासत से बहस करती है और संवाद की शैली में लिखी गयी किताब है. अच्छे शासक कैसे बनते हैं, इस पर इज़्हार-ए-खयाल करते हुए अफ्लातून (Plato) ने जो बात कही है, उसका अंग्रेजी अनुवाद इस तरह है:

Unless philosophers bear kingly rule ... or those who are wow-called kings and Princes become genuine and adequate philosophers, there will be no respite from evil.

यानी - 'जब तक दार्शनिक बादशाहत का पद न संभालें, या जो लोग आज बादशाह और शहजादे कहे जाते हैं, वह वास्तव में दार्शनिक न हो जाएं उस वक़्त तक बुरे बादशाहों से छुटकारा नहीं मिलने वाला.'

अफ्लातून के इस दृष्टिकोण के बाद ऐसे कई हुक्मरान हुए, जिन्हें दार्शनिक बादशाह (Philospher-king) कहा जाता है. उदाहरणार्थ रूमी बादशाह मार्कस अरेलियस (Mareus Aurelius) रूस की महारानी कैथिरीन द्वितीय (Catherine II), पुरोशिया का फ्रेड्रिक द्वितीय (Frederick II), मक़दूनिया का डिमेट्रियस (Demetrius) और वर्तमान काल में सिंगापुर का 'ली कुवान इयू' (Lee Kuan Yew) दार्शनिक शासक थे. मगर वे बेहतर हुक्मरान साबित न हो सके.

खुद यूनानी दार्शनिकों के कुछ चेले शहंशाह के पद तक पहुंचे. मसलन अरस्तू (Aristotal) रोम के इस्कंदर यानी (सिकंदर-ए-आज़म) का शिक्षक था. इसी तरह डिमेट्रियस अरस्तू के दर्शन स्कूल का प्रशिक्षित छात्र रहा था. मगर ये दार्शनिक हुक्मरां दूसरे से बेहतर हुक्मरान साबित न हो सके. पीटर ग्रीन (Peter Green) के शब्दों में, 'जो हुआ वह यह था कि कुछ नहीं हुआ, ऐसा मालूम होता है कि सत्ता दार्शनिकों को भी बिगाड़ देती है.'

What happened was, nothing happend...Power, it appeared, could corrupt even Philosophers. (*"TIME"* Magazine, May 13,1991)

कार्लमार्क्स ने यह दृष्टिकोण पेश किया कि तमाम खराबियों की जड़ राष्ट्रों की आर्थिक व्यवस्था है. आर्थिक सम्राज्यवाद की व्यवस्था में एक मालिक होता है और दूसरा गुलाम. इस आधार पर जो मालिक है वह गुलाम का शोषण करता है. अगर व्यक्तिगत स्वामित्व की व्यवस्था खत्म करके 'सब का स्वामितव' की व्यवस्था

क़ायम की जाये, तो हर तरह के जुल्म और जब्र की जड़ कट जाये. इसके बाद न कोई मालिक होगा न कोई गुलाम. फिर कौन किसका शोषण करेगा और जुल्म किसपर कौन करेगा?

१९१७ में रूस में मार्क्सवादी क्रांति आई और वह उपर चर्चित प्रकार का स्वामितवहीन व्यवस्था शक्ति बल पर स्थापित कर दी गई. मगर बाद की स्थितियों ने बताया कि मार्क्स द्वारा प्रस्तावित स्वामित्वहीन व्यवस्था इतिहास की सबसे ज्यादा ज़ालिमों वाली व्यवस्था थी. और वहां के शासक तमाम सत्ताधिकारियों से ज्यादा बर्बर और हिंसक. तथा कथित सामूहिक स्वामित्व की व्यवस्था ने जुल्म और बर्बता में वृद्धि ही कर दी.

इसी तरह बीसवीं सदी के प्रथम पूर्वाद्ध में एशिया और अफ़्रीका में बहुत बड़े पैमाने पर नव औपनिवेशिक व्यवस्था के ख़िलाफ़ आजादी के आंदोलन खड़े हुए. उन आंदोलनों के झंडा बरदारों का कहना था कि तमाम जुल्म और फसाद का कारण विदेशी शासन है. अगर देश में देशवासियों की सत्ता स्थापित कर दी जाये तो शोषक सत्ता का खुद ही समापन हो जायेगा. कौमी आजादी का यह आंदोलन कामयाब हुआ और हर देश में खुद देशी लोगों ने हुकममत संभाल ली. मगर शोषण और बर्बरता का ख़ात्मा नहीं हो सका. स्वदेशी लोग बदस्तूर जालिम हुक्मरान बन गये. जो जुल्म पहले विदेशियों के हाथ से होता था, वह अब स्वदेशियों के हाथों होने लगा.

खुदा का दीन (इस्लाम) ऊपर लिखित प्रकार के तमाम दावों को गलत बताता है. उसका कहना है कि इंसान के अंदर वास्तविक सुधार सिर्फ एक चीज से पैदा होता है, और वह अल्लाह का खौफ़ है. अल्लाह के डर के सिवा कोई चीज नहीं जो एक सत्ताधिकारी व्यक्ति को इंसाफ और सच्चाई के धरातल पर टिकाये रखे.

सहाबा से पहले यह दावा, आम इंसानों की नज़र में, सिर्फ एक दावा था. क्योंकि खालिस ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में वह प्रामाणिक नहीं था. उनसे पहले लिखित इतिहास में कोई प्रयुक्त उदाहरण नहीं था जो इस दृष्टिकोण को घटनात्मक स्तर पर सिद्ध करता हो.

सहाबा ने इस दृष्टिकोण के हक में घटनात्मक मिसाल क़ायम की. उनको सत्ता मिली मगर वह उस बिगाड़ से सुरक्षित रहे, जिसमें हर दौर के हुक्मरान मुब्तला रहे हैं. सच्चाई यह है कि इस्लाम एक दावा है और असहाब-ए-रसूल उसकी दलील. इस्लाम एक दृष्टिकोण है और असहाब-ए-रसूल उस दृष्टिकोण के हित में व्यवहारिक पुष्टि का मूल आधारित सिद्ध नमुना.

# नये दौर के नक़ीब

दूसरे खलीफ़ा उमर फ़ारूक़ रहिअल्लाहु अन्हु के जमाने में ईरान पर विजय प्राप्त हुई, ईरान से जंग करने के लिये भेजी गयी हथियारबद्ध फौज के सिपहसालार हज़रत सा'द बिन अबी वक़्क़ास थे.

उस ज़माने की घटना में से एक घटना यह है कि ईरानी बादशाह युज्दगर्द के निर्देश पर उसके सिपहसालार रुस्तम ने हज़रत सा'द को यह पैग़ाम भेजा कि सुलह की बातचीत के लिये अपने आदमियों का एक प्रतिनिधि मंडल भेजिये. उस दौरान जो ईरानी हुक्मरानों से बात करने के लिये उनके यहां गये, उनमें से एक हजरत रिबई बिन आमिर थे:

रिबई बिन आमिर रुस्तम के दरबार में पहुंचे. उसने अपने दरबार को शान्दार तौर पर सजाया था. कीमती क़ालीन, आलीशान तख्त, सोना चांदी और हीरे जवाहरात के आरायशी सामानों से बड़ा ख़ेमा जगमगा रहा था. रूस्तम अपने सिर पर सुनहरी ताज पहने हुए अपने तख्त पर बैठा हुआ था.

रिबई बिन आमिर के जिस्म पर बहुत मामूली कपड़ा था. वह एक तलवार लटकाये हुए और एक छोटे घोड़े पर सवार होकर अन्दर दाखिल हुए, वह घोड़े से उतरे नहीं, यहां तक कि वह रुस्तम के तख्त तक पहुंच गये. तख्त के पास पहुंचकर वह घोड़े से उतरे और कालीन में अपना बड़ा खंज़र गाड़ कर उससे घोड़े को बांध दिया. रुस्तम के लोगों ने इस बेबाकाना अंदाज पर ऐतिराज किया तो उन्होंने जवाब दिया कि मैं ख़ुद से नहीं आया हूं बल्कि तुम्हारे बुलाने पर आया हूं. अगर तुम मुझे मेरे हाल पर रहने दो तो ठीक है, वर्ना मैं वापस चला जाऊंगा.

रुस्तम ने अपने आदमियों को रोका और कहा कि इनको इनके हाल पर छोड़ दो, इनसे आपत्ति न करो. रुस्तम ने कई भिन्न सवालात किये, जिसका उन्होंने दो टूक जवाब दिया रुस्तम के एक सवाल का जवाब उन्होंने इन शब्दों में दिया:

'उन्होंने कहा कि अल्लाह ने हमको भेजा है, ताकि अल्लाह के बंदों में से जिसको वह चाहे, हम उसको बंदों की इबादत से निकाल कर अल्लाह की इबादत की तरफ ले आएं, और दुनिया की तंगी से दुनिया के व्यापकता की तरफ, और मजहबों के जुल्म से इस्लाम के इंसाफ की तरफ. बस अल्लाह ने हमको अपने 'दीन' के साथ अपनी मख्लूक की तरफ भेजा है ताकि हम लोगों को इस तरफ बुलाएं, बस जो इसको कुबूल कर ले हम भी उसे कुबूल कर लेंगे, और इससे वापस चले

जाएंगे. और जो कोई इन्कार करे उससे हम लड़ेंगे, यहां तक कि उसे अल्लाह के वायदे तक पहुंचा दें

सहाबी के यह शब्द कोई साधारण शब्द न थे. इसमें दरअस्ल उस महान परिवर्तन की तरफ इशारा था, जो असहाब-ए-रसूल के जरिये लाया गया, और जिसने विश्वस्तर पर इंसानी इतिहास को बदल दिया. इसका विस्तृत विवरण इन पंक्तियों के लेखक की किताब 'इस्लाम दौर-ए-जदीद का खालिक़' में देखी जा सकती है.

रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की नबूवत के वक्त से जरा पहले दुनिया की स्थिति यह थी कि सारी दुनिया में नस्लवादी परंपरा की बादशाहत (साम्राज्यवादी सत्ता) का रिवाज था. उस बादशाहत ने हर जगह जब्र की वह फ़िज़ा पैदा कर सकती थी, जिसे हैनरी प्रेन ने शाहाना मुतलक़ियत (Imperial absolutism) यानी साम्राज्यवादी निरंकुशता या निरंकुश तानाशाही कहा है, एक व्यक्ति जिसके सर पर हुकूमत का ताज हो, वह सब का आक़ा था और तमाम लोग उसके ग़ुलाम.

मुश्रिकाना (बहुईश्वरीय) 'मजहब और निरंकुश तानाशाही दोनों ने मिलकर प्रकृति के वैज्ञानिक अध्ययन का दरवाजा बंद कर रखा था. इसका नतीजा यह था कि प्रकति के अंदर समाहित खुदा की तमाम नेमतें अखोज्य और उपयोगहीनता का शिकार थीं

मजहब में मजहबी पेश्वाओं का मुकम्मल कब्जा था. वे दुनिया में खुदा के नुमाइंदा बनकर इंसानों को अपना बनाये हुए थे, उनके गढ़े हुए भौतिक धर्म के नीचे पूरी मानवता पिस रही थी. इस पेश्वाई निज़ाम (व्यवस्था) से विरोध करने वाले को सख़्ततरीन सज़ा दी जाती थी, ताकि लोग दबे रहें और उससे बग़ावत की हिम्मत न कर सकें अल्लाह चाहता था कि इस स्थिति को बदला जाये. असहाब-ए-रसूल ने असाधारण कुर्बानियों के ज़रिये जब्र की इस व्यवस्था को तोड़ा. उन्होंने इंसान के ऊपर खुदाई रहमतों का वह दरवाजा खोल दिया जो हज़ारों साल से उनके ऊपर बंद पड़ा था.

## इंसानियत का नमूना

हदीस में इरशाद हुआ है - 'मेरे असहाब सितारों की तरह हैं, उनमें से जिस किसी का भी तुम अनुकरण करोगे हिदायत पा जाओगे.'

हकीकत यह हे कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के असहाब इस्लाम

का नमूना हैं. उनको देख कर हम जान सकते हें कि हमें अललाह की सत्ता को पाने के लिये इस दुनिया में क्या करना चाहिये. एक अनुयायी ने इस सच्चाई को इस तरह शब्दों में ब्यान किया –"सहाबा ही तो नमूना है."

ईमान क्या है और मोमिन किसे कहते हैं? इसका स्पष्टीकरण कुरआन में मौजूद हे. इसी के साथ अल्लाह तआला ने यह विशेष आयोजन किया कि सच्चे ईमान का व्यवहारिक नमूना दुनिया में कायम कर दिया. यह व्यवहारिक नमूना उसी मानव समूह के जरिये क़ायम किया गया है, जिसे असहाब-ए-रसूल के मित्रगण कहा जाता है. अल्लाह तआला ने असहाब-ए-रसूल के ईमान व इस्लाम को कुबूल किया और उसकी पुष्टि की. इस तरह उसने व्यवहार की भाषा में तमाम इंसानों को बता दिया कि उसे कौन सा ईमान व इस्लाम वांछित है.

इस नमूना के सामने आने के बाद अब हर व्यक्ति को चाहिये कि वह अपने ईमान को असहाब-ए-रसूल के ईमान से मिलाकर देखे. अगर उसका ईमान असहाब-ए-रसूल के नमूने के मुताबिक हे तो ठीक है, वर्ना उसका ईमान खुदा के यहां स्वीकार किये जाने के योग्य नहीं.

असहाब-ए-रसूल की यह हैसियत कि वह तमाम इंसानी नस्लों के लिये 'सितारा' करार दिये गये, और ऐलान किया गया कि तमाम लोग उनसे रौशनी हासिल करें, यह कोई साधारण बात नहीं. हकीकत यह है कि असहाब-ए-रसूल ने वह इंतिहाई महंगी क़ीमत अदा की जो किसी को इस काबिल बनाती है कि वह लोगों के लिये निर्देश का सितारा बने. इस कीमत की अदायगी के बाद ही यह संभव हुआ कि उनके हक़ में यह घोषणा की जाये कि वह उनके नमूने से रौशनी लेकर अपनी जिंदगियों का निर्माण करें.

आज एक व्यकित मुहम्मद साहब पैगंबर पर ईमान लाकर मोमिन कहलाता है. सहाबा को मोमिन बनाने के लिये पैगंबर पर ईमान लाने के लिये इम्तिहान में खड़ा होना पड़ा. आज हम मज़हबी आज़ादी के माहोल में 'दीनदार' बने हुए है. उन्हें मज़हबी जब्र के माहौल में दीन को एख़्तियार करना पड़ा. आज हम एक गर्वोन्नत इस्लामी इतिहास के मालिक हैं, उन्हें एक ऐसे इस्लाम से जुड़ना पड़ा जिसका सिरे से कोई इतिहास ही न था.

आज लोगों को इस्लाम के नाम पर बड़े-बड़े सम्मान और उपाधियां मिल रही हैं. उन्हें इस्लाम की खातिर अपने आप को बेकीमत कर देना पड़ा. आज इस्लाम की झंडा उठाने से हर जगह लोगों को नेतृत्व और स्वागत का तोहफा प्राप्त हो

रहा है. उन्हें एक ऐसे इस्लाम का झंडाबरदार बनना पड़ा, जिसने उनकी वर्तमान प्रतिष्ठा और सम्मान को भी मिट्टी में मिला दिया.

सहाबा ने जिस इस्लाम को अपनाया उसे एख्तियार करना उदारता के बिना असंभव था. उन्होंने जिस दीन को अपना दीन बनाया उसकी प्रेरणा अल्लाह के सिवा कुछ और नहीं हो सकती. उनका इस्लाम मुकम्मल तौर पर बेदाग इस्लाम था. उनकी लिल्लाहियत (अल्लाह से संबद्धता) हर इम्तिहान में पूरी उतरी थी, यही कारण है कि वे इतिहास के ऐसे चुने गये विशेष समूह क़रार पाये, जिसका अनुकरण किया जा सके, जिसके नमूने को हमेशा के लिये अपना रहनुमा बना लिया जाये.

जो लोग नियमित स्थिति में इस्लाम को अख्तियार करें, वह कभी इस्लाम का नमूना नहीं बन सकते. इसी तरह जो लोग इस दौर में इस्लाम का नाम लें जबकि इस्लाम का नाम लेने से नेतृत्व मिलता है, आर्थिक लाभ प्राप्त होते हैं, और समाज में इज्जत का मुकाम हासिल होता है, वह भी नमूना बनने के लायक़ नहीं. क्योंकि नमूना बनने के लिये खालिस होना ज़रूरी है.

इस्लाम का नमूना सिर्फ वह लोग बन सकते हैं, जो असाधारण स्थिति में इस्लाम पर कायम रहें, जो इस दौर में इस्लाम के साथ अपने आप को सम्बद्ध करें, जबकि उसके साथ संबद्धता के बाद प्राप्त प्रतिष्ठा भी समाप्त हो जाये. जब अवाम के बीच अपनी लोकप्रियता खो दे.

असहाब-ए-रसूल इसी तरह के असाधारण लोग थे. जिन्होंने असाधारण स्थिति में इस्लाम का साथ दिया. उन्होंने खोने की कीमत पर अपने आप को इस्लाम से जोड़ा. वे सर्वोच्च मानवता के मंच पर खड़े हुए, वे अपने स्तरीय वचन और कर्म के आधार पर इस योग्य हुए कि वे तमाम कौमों (राष्ट्रों) और तमाम नस्लों के लिये 'रोल मॉडल' बन गये. वे क्यामत तक आने वाले इंसानों के लिये स्थिर मिसाल बन गये.

## दुनिया के लिये रहमत

पैगंबरों के बारे में अललाह ताआला की सुन्नत यह रही है कि उनके द्वारा संबोधित राष्ट्र या समुदाय अगर उन्हें मान्यता न दे तो उसे धरती या आसमानी यातना के जरिये मारकर हलाक कर दिया जाये. चुनांचे पिछले जमानों में ऐसा हुआ कि पैग़ंबरों द्वारा संबोधित राष्ट्रों को उनके इनकार के कारण बार-बार

हलाक किया जाता रहा (अल-अनकबूत ४०). आखिरकार अल्लाह ने चाहा कि एक ऐसा पैग़ंबर भेजे जिसके बाद 'हलाकत' का उपर चर्चित सिलसिला खत्म हो जाये. मोहम्मद-ए-अरबी सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम यही खास पैग़ंबर थे. इस लिये कुरआन में आपको दुनिया वालों के लिये रहमत (अल-अंबीयाअ-१०७) कहा गया है. इस आयत के संदर्भ से कुछ तफ्सीर करने वालों (व्याख्याताओं) की कुछ पंक्तियां यहां दर्ज की जा रही हैं:-

"और हमने तुमको बस रहमत बना कर भेजा है." इसकी तफ़्सीर में अब्दुल्लाह बिन अब्बास ने कहा है कि मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम तमाम इंसानों के लिये रहमत थे. जो आदमी आप पर ईमान लाया और आपकी गवाही दी या पुष्टि की उसने सम्मान प्राप्त किया और जो आदमी आप पर ईमान नहीं लाया वह जमीन में धंसने और ग़र्क़ (डूबने) होने के उस अज़ाब (यातना) से बच गया जो दूसरी कौमों को पेश आई ". (अल-जामि उल-एहकाम अल-कुरआन ११/३५०)

"अगर यह कहा जाये कि उसको कौन सी रहमत मिली जिसने आपको नकारा, तो इसका जवाब वह है, जो इब्न-ए-जरीर ने अब्दुल्लाह बिन अब्बास से रिवायत किया है. उन्होंने कहा है कि जो व्यक्ति अल्लाह और आखिरत (अंतिम दिन) पर ईमान लाया उसके लिये दुनिया और आखिरत में रहमत लिख दी गई. और जो आदमी अल्लाह और रसूल पर ईमान नहीं लाया वह धंसाये जाने और पथराव का शिकार होने की उस यातना से बच गया जो पिछली उम्मतों को पेश आया था."(मुख्तसर तफ्सीर इब्न-ए-कसीर २/५२५)

"और कहा गया है कि आप अहले ईमान के लिये दोनों दुनिया में रहमत हैं. और इन्कार करने वालों के लिये दुनिया में रहमत क्यों कि उन पर घातक यातना और धंसाये जाने तथा मिट्टी के बराबर कर दिये जाने का अज़ाब टाल दिया गया." (तफ्सीर-ए-नफ्सी ३/९१)

"आप मुन्किरों तक के लिये रहमत थे, आप की वजह से उनकी सज़ा स्थगित हो गई. और उनपर अजाब-ए-मुस्तासल (शोषण की यातना) नहीं आया. मसलन धंसाना और गर्क करना." (सफ्वतुत तफ़ासीर २/२७७)

"बुख़ारी ने अपने इतिहास में अबू हुरैयरा से रिवायत किया है कि आपने फरमाया कि मैं रहमत बनाकर भेजा गया हूं, मैं अजाब बना कर नहीं भेजा गया. और अब्दुल्लाह बिन अब्बास ने कहा है कि आप मुन्किरों के लिये दुनिया में उन पर

अजाब टल जाने के कारण 'रहमत' हैं और मिट्टी के बराबर हो जाना या धंसना और घातक अजाब (यातनाएं) उठा लिये जाने के कारण (रहमत हैं). (अल-तफ्सीर अल-मज़हरी ६/२४४)

मगर दुनिया में "रसूल-ए-रहमत" का दौर लाना सादा तौर पर महज़ नियुक्तिगत (appointmental) मामला न था. यह एक नये इतिहास को ज़हूर (समान पर सदृश रूप में) लाने का मामला था. इसके लिये जरूरत थी कि एक ताकतवर इंसानी टीम रसूल-ए-रहमत की संपूर्ण सहायता करे और कारणों एवं आधारों की धारा को विमुख होने से बचाकर सही दिशा में डाले हुए वांछित ऐतिहासिक इन्क़लाब ले आए, असहाब-ए-रसूल अपनी प्रमुख चेतना और बेपनाह बलिदानों के ज़रिये यही ताकतवर टीम बने. उन्होंने रसूल-ए-रहमत के खुदाई योजनाओं को व्यवहारिक रूप से क़ायम किया.

कुरआन के मुताबिक मौजूदा दुनिया इंसान के लिये आज़माइशगाह है. यहां इंसान को आजादी देकर देखा जा रहा है कि कौन अच्छा कर्म करता है और कौन बुरा? इंसान के इसी रिकार्ड के मताबिक उसके स्थायी परिणाम का फैसला किया जायेगा. खुदा के पैग़ंबर इंसान को इसी प्रकार की जिंदगी की खबर देने आते थे. जब आखरी रसूल पर पैग़ंबरों की आमद का सिलसिला खत्म किया गया तो उसके बाद अल्लाह ने चाहा कि 'दीन-ए-पैग़ंबर' को 'पैग़ंबर के व्यक्तित्व' का बदल बना दिया जाये. जिंदा पैग़ंबर के बजाये पैग़ंबर का लाया हुआ दिशा निदेशक या हिदायतनामा लोगों के लिये हिदायत (मार्गदर्शन) का ज़रिया बन जाये.

यह सिर्फ उस वक्त संभव था जबकि खुदा का मज़हब हमेशा के लिये एक सुरक्षित मज़हब बन चुका हो. पिछले ज़माने में ऐसा संभव न हो सका. क्योंकि पैग़ंबरों को इंसानों की इतनी बड़ी संख्या नहीं मिली, जो दीन की हिमायत करके दुनिया में उसकी सुरक्षा की व्यवस्था करती. यही वजह है कि हर पैग़ंबर का 'दीन- उसके बाद मिटा दिया जाता रहा. आज पिछले पैग़ंबरों में से किसी भी पैग़ंबर का इतिहास मौजूद नहीं. और न किसी पैग़ंबर की किताब सुरक्षित हालत में पाई जाती है.

इस मक़सद के लिये ज़रूरत थी कि खुदा के 'दीन' को सिद्ध दृष्टिकोण की सतह से उठा कर उसे व्यवहारिक क्रांति या अमली इन्कलाब के दर्जे तक पहुंचा दिया जाये. इसके लिये ज़रूरत थी दीन के विरोधियों की शक्ति तोड़ दी जाये ताकि वह भूतकाल या अतीत के तरह इस दीन को मिटाने में कामयाब

न हो सकें इसके लिये जरूरत थी कि खुदा के 'दीन' की पीठ पर एक ताक़तवर उम्मत खड़ी कर दी जाये, जो तमाम विरोधियों के बावजूद उसके संरक्षक और निगरां बन सके. इसके लिये जरूरत थी कि खुदा के 'दीन' की बुनियाद पर एक मुकम्मल इतिहास अस्तित्व में आ जाये ताकि खुदा के दीन की पीठ पर एक व्यवहारिक नमूना मौजूद रहे, जो हर दौर के इंसानों की रहनुमाई करता रहे.

यह योजना निस्संदेह इतिहास की मुश्किल योजना थी. असहाब-ए-रसूल ने हर तरह की रूकावटों और मुश्किलों के बावजूद पैग़ंबर-ए-आखिर-उज-जमां का साथ देकर इसको मुकम्मल किया. इसके लिये उन्होंने अपना वतन. और अपने रिश्तेदारों को छोड़ दिया. 'कुरैश' आपके दुश्मन हो गये, मगर सहाबा ने अपने जान-माल को लुटाकर पैग़ंबर की मदद की. 'हुनैन' की जंग में दुश्मनों ने आप पर तीरों की बारिश कर दी. उस वक्त सहाबा की एक जमाअत ने आपको चारों तरफ से अपने घेरे में ले लिया. उनके जिस्मों पर तीर इस तरह लटक रहे थे जिस तरह साही के जिस्म पर काटे लटकते हैं. मगर उन्होंने पैग़ंबरों का साथ नहीं छोड़ा. रोम और ईरान की ताकतवार सल्तनतें खुदा के 'दीन' की दुश्मन हो गई. सहाबा ने उन ताकतवर चट्टानों को तोड़ डाला वगैरह.

सहाबाकेराम ने हर कुर्बानी की कीमत पर पैग़ंबर-ए-आख़िरुज़-जमां का साथ दिया. उन्होंने अपने बेपनाह अमल से वह ऐतिहासिक स्थितियां पेदा कीं, जिसके बाद सुन्नतुल्लाह (अल्लाह की सुन्नत) के मुताबिक़ नाबियों का सिलसिला खत्म हुआ और इंसानियत बार-बार सांसारिक हलाकत के परिणाम से बच गई. नुबूव्वत-ए-रहमत की स्थापना एक खुदाई योजना थी, मगर यह असहाब-ए-रसूल ही थे जिन्होंने कारणों की इस दुनिया में इस योजना को पूरा किया.

रिज़वानुल्लाहि तआला अलैहिम अजमईन.